धूल के बादल

प्रभदत्त सिंह

धूल के बादल

एक प्रतीकात्मक उपन्यास

हिन्दी समिति
सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश शासन
लखनऊ

फूल के बादल

ब्रह्मदत्त सिंह

निवेदन

हमारा युग वर्गवाद का युग है। जो किसी वर्ग का नहीं, वह कहीं का नहीं। वर्ग व्यक्ति का भाग्य है, उसका भविष्य है, इसलिये वर्ग की जकड़ के बाहर जाना उसके लिये सम्भव नहीं।

विज्ञान, सेक्स तथा युद्धों ने मानव-जीवन को ज़ोर से झकझोर दिया है। चारो ओर एक कम्पन है, एक अविश्वास है— आने वाले कल के प्रति। मानवता का अस्तित्व प्रागैतिहासिक युग में भी इतने ख़तरों में नहीं रहा होगा। आज जब चारो ओर प्रगति देखने को मिलती है तो वहीं थकान भी नज़र आती है। अपने होने के लिये व्यक्ति को आज जो कुछ करना पड़ता है और साथ ही आधुनिक व्यवस्था के शिकंजो में जिस प्रकार फँसना पड़ता है उसे देखकर सन्तोष नहीं होता।

क्या जो कुछ व्यक्ति को आज करना पड़ता है उसे किये बिना, शिकंजों में फँसे बिना, जीवन सीधे-सादे ढंग से नहीं काटा जा सकता?—इन्हीं विचारों से उद्वेलित मैंने उपन्यास के 'पागल' को जाड़े की एक ठिठुरती रात में देखा। उस रात का दृश्य अब तक नहीं भूला और न भूलेगा। इस उपन्यास को लिखने का निश्चय उसी क्षण, उसी स्थान पर किया।

यद्यपि उपन्यास के सारे पात्र--'पागल' को छोड़ कर—कल्पित हैं, तथापि उनकी अच्छाइयाँ-बुराइयाँ कल्पित नहीं, अपितु सत्य हैं।

उपन्यास का पागल—जिसके चारो ओर कहानी घूमती है—हमारी समृद्धि, सृजन और अहंकार को एक चुनौती है; हमारी कला-साधना, संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान को एक ललकार है। वह एक अपील है—हम सब के नाम।

उपन्यास के अन्य पात्र मूर्ख से प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु उन पर क्रोध के स्थान पर दया आती है। आखिर वे यह सब क्यों करते हैं?—

किन्तु सभी पात्र अपने को बुद्धिमान तथा मेधावी समझते हैं, क्योंकि परिस्थितियाँ उनसे ऐसे ही आचरण की अपेक्षा करती हैं। वे नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं। चूँकि आज की व्यवस्था उन्हें ऐसा कुछ करने पर विवश करती है, इसलिये उन्हें यह सब करना पड़ता है। परन्तु वे अपने कार्य्यकलापों को अनुचित नहीं, अपितु उचित मानते हैं—ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार हम अपने मत, अपने विचारों तथा अपने कार्य्यों को उचित समझते हैं।

अन्त में अपनी रचना को पाठकों को देते हुये अपनी त्रुटियों के लिये महात्मा टॉलसटाय के निम्न वाक्य का अवलम्ब लूँगा—

'Art is not a handicraft, it is the transmission of feelings the artist has experienced.'

बलराम पुर हाउस,
प्रयाग।
मई २६, १९५७
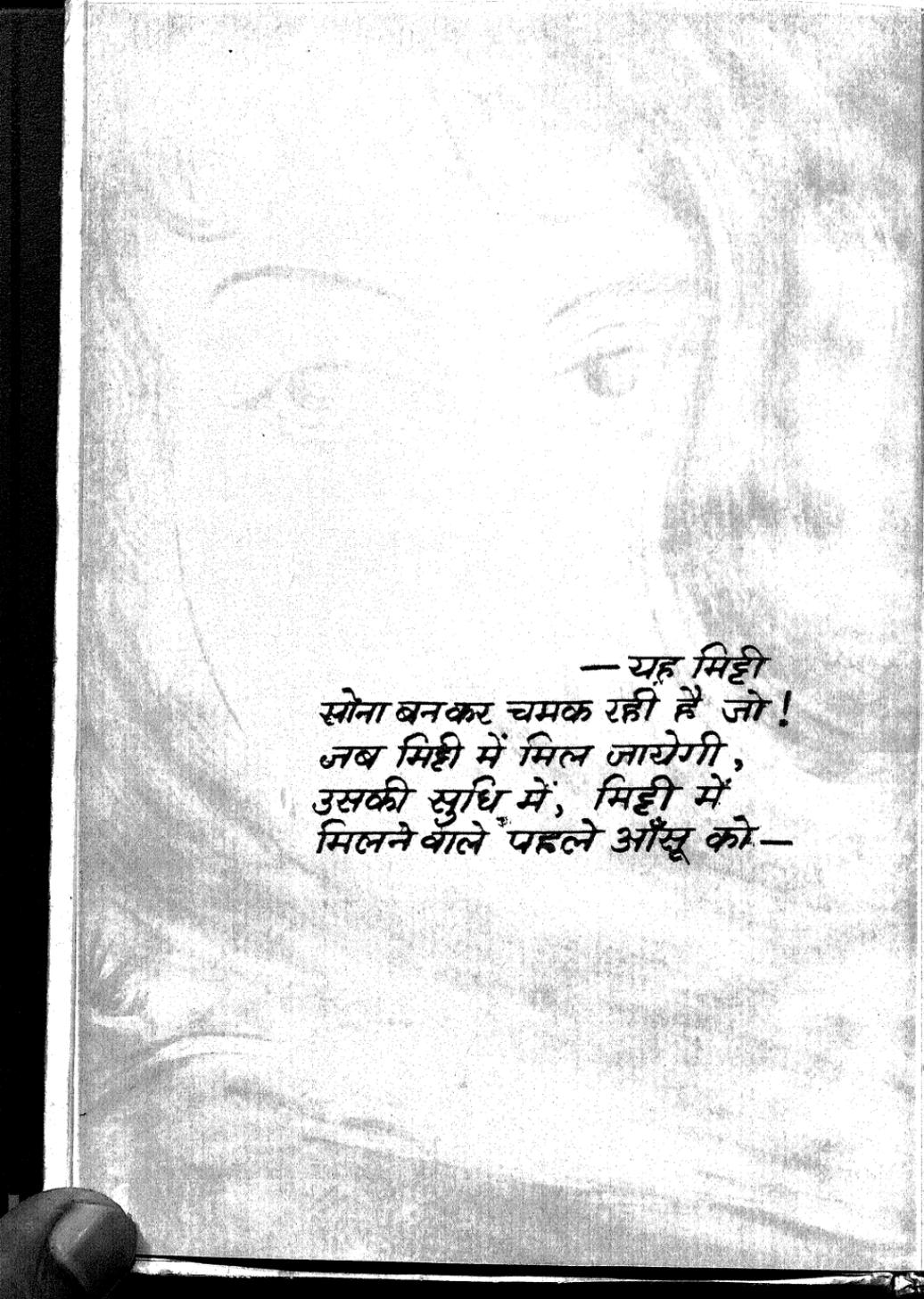
—यह मिट्टी
सोना बनकर चमक रही है जो!
जब मिट्टी में मिल जायेगी,
उसकी सुधि में, मिट्टी में
मिलने वाले पहले आँसू को—

And what is Art whereto we press
Through paint and prose and rhyme —
When Nature in her nakedness
Defeats us every time ?
It is not learning, grace nor gear,
Nor easy meat and drink,
But bitter pinch of pain and fear
That makes creation think.

——Rudyard Kipling

जाड़े की ढलती काँपती धूप । काँपता सिहरता वातावरण । ठंढी पछुआ के झकोलों में लगता था असंख्य ब्लेड उड़ रहे थे जो मौका पाते ही सर्र से काट लेते थे। सूरज डरता-काँपता सा लड़खड़ा कर गिर रहा था । वायु में झीनी सी धुन्ध तैर रही थी । शीत के कारण चारो ओर एक ऐंठन सी फैल रही थी । बाजार में दबी दबी चहल-पहल, ठिठुरे-ठिठुरे लोग, मोल-भाव तथा क्रय-विक्रय । सड़क पर प्रोफेसर प्रियव्रत और विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी-विनय-चले जा रहे थे ।

"स्पिनोज़ा ने ईश्वर के विषय में जो कुछ कहा है वह बहुत उचित जान पड़ता है ।" विनय कह रहा था ।

"हाँ, यही कारण है कि आइन्सटाइन कहा करते थे कि ईश्वर के बारे में उनका भी वही मत है जो स्पिनोज़ा का था ।" प्रोफेसर प्रियव्रत बोले ।

पीछे हार्न देती हुई एक कार आ कर रुकी । बातचीत का क्रम टूट गया । प्रोफेसर और विनय फुटपाथ पर हो गये । कार चली गई ।

"क्या जीवन है हमारा भी, पल भर को दम मारने की फ़ुरसत नहीं। लोग भीड़ में भी कार चलाते हैं तो चालीस-पचास, क्योंकि उनके पास समय नहीं रहता ।"

"नहीं कुछ लोग रैश-ड्राइविङ्ग करते ही हैं, और.......।" प्रोफेसर प्रियव्रत को सहसा किसी के कन्धे का धक्का लगा । उन के मुंह से सहसा निकल गया —"ह्वाट नॉनसेन्स ?"

"नैरो एस्केप ।"—विनय ने दाद दी ।

एक नंगा-पागल आदमी प्रोफेसर की बगल से गुज़र चुका था । प्रोफेसर को धक्का देने के लिये न तो उसने माफी माँगी और न जो कुछ उन्होंने कहा उस पर ही ध्यान दिया ।

"सिली ! पता नहीं ऐसे लोग क्यों सड़क पर घूमने पाते हैं।" प्रोफेसर जिस कन्धे में धक्का लगा था उस ओर की कोट की धूल झाड़ते हुये बोले।

"पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन बड़ा ही ढीला होता जा रहा है।' विनय ने प्रोफेसर की ठकुरसोहाती की।

प्रियव्रत अभी अपनी नाक भौं सिकोड़ ही रहे थे कि उन के पीछे हल्ला गुल्ला होने लगा। वही नंगा-पागल एक हलवाई की दूकान पर खड़ा था। हलवाई की भारी भरकम गालियों से हवा बोझिल हो रही थी। वह उस पागल को मारने के लिये अपनी दूकान की गद्दी से उझक उझक पड़ता था। पागल आगे बढ़ गया, निडर-निःसंकोच। प्रियव्रत और विनय भी आगे बढ़े।

"देखा तुम ने कितनी अराजकता फैली हुई है।" प्रियव्रत बोले।

"जी हाँ, हमारे नगर की सड़कों पर नंगे-भूखों और चौपायों की भरमार रहती है। इन के कारण रास्ता चलना दूभर हो जाता है।" विनय बोला।

प्रोफेसर प्रियव्रत और विनय बाजार से निकल आये थे। विनय बोला—"स्पिनोज़ा के जीवन पर आप के पास कुछ पुस्तकें होंगी क्या ?"

"हैं, ले आना। स्पिनोज़ा ने बड़ी ही कठोर यातनायें सहीं, आजीवन दरिद्रता में रहा किन्तु अपने विचारों पर अडिग बना रहा।"

× × ×

प्रोफेसर प्रियव्रत स्थानीय विश्वविद्यालय में राजनीति के रीडर हैं। कहने को धुरन्धर विद्वान हैं। थोड़े ही समय में उन्होने विश्वविद्यालय में अपनी धाक जमा लिया था। वे और उन का दल जिस की सहायता कर दें उस का बेड़ा पार। यों तो वे दलबन्दी के विरुद्ध बोला करते किन्तु स्वयम् उन का एक दल था, क्योंकि बिना दलबन्दी के आजकल काम नहीं चलता। अतः जब उनका दल था तो उसका कुछ काम भी था। विश्वविद्यालय में छात्रों की हड़-ताल से लेकर मेहतरों की वेतन-वृद्धि तक प्रायः सभी राजनैतिक मामले उनके

दल तथा व्यक्तित्व द्वारा प्रभावित होते रहते। एक प्रकार से वे विश्वविद्यालय के झगड़े-झंझटों के मानसरोवर थे। व्यक्तित्व उनका कुतुब मीनार की भाँति ऊँचा था जिस के सामने घण्टाघर जैसे व्यक्तित्व के अन्य प्राध्यापक फीके पड़ जाते थे। यों तो वे रुसो, शेली, मिल, टाल्सटाय के सम्मिश्रण थे, लेकिन बन कुछ नहीं पाये थे। हां, उन की किताबें हाई स्कूल से एम. ए. तक धड़ाधड़ चलती थीं। धन काफी था इसलिये जीवन में मौज ही मौज थी।

जिस प्रकार गंगा में गन्दे नालों का पानी पहुँच कर पवित्र गंगाजल बन जाता है उसी प्रकार प्रोफेसर प्रियव्रत विश्वविद्यालय में खप गये थे। यों तो वे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के कट्टर समर्थक थे, किन्तु घर के नौकरों को इतवार या किसी त्यौहार के दिन भी छुट्टी देने में उन्हें दारुण कष्ट होता था। कहने को वे टाल्सटाय के अनन्य भक्त थे, किन्तु इस डर से कि प्रकाशक उन की पुस्तकों की रॉयल्टी के हिसाब में गड़बड़ न करें उन्होंने अपने ढाई साल के लड़के के नाम से अपनी पुस्तकों का प्रकाशन करवाया था। इन्कमटैक्स से बचने के लिये जितना पापड़ वे बेलते शायद उतनी किसी बनिये की भी हिम्मत न पड़ती। संक्षेप में जितनी आधुनिक अच्छाइयाँ होनी चाहिये वे सब उन में विद्यमान थीं।

आज प्रोफेसर की मोटर खराब हो गई थी इसलिये पैदल ही जा रहे थे। चाहते तो उन्हें दूसरी मोटर मिल जाती या ताँगे या रिक्शे में जा सकते थे, किन्तु यह भी उन की अच्छाइयों में से एक थी कि वे यदा कदा पैदल ही यूनिवर्सिटी जाया करते और इसका विद्यार्थियों पर बड़ा ही स्वस्थ प्रभाव पड़ता।

× × ×

रात में भोजनोपरान्त प्रियव्रत जब डायरी लिखने बैठे तो उन्होंने अन्य साधारण बातों के अलावा लिखा "बाजार में एक नंगे-पागल आदमी से धक्का खा गया। पता नहीं क्यों उस का बाद को ध्यान आने पर ऐसा लगा कि वह एक असाधारण व्यक्ति......। नहीं, व्यक्ति नहीं। फिर क्या है? आज की कड़कती सर्दी में वह कहाँ सोयेगा?" प्रियव्रत ने डायरी बन्द कर दी और

जाकर लेट गये। उनको अपने एक मित्र के ये वाक्य स्मरण हो आये जो उस ने आज से लगभग दस साल पहले कहा था। 'अकबर बहुत बड़ा एक्सपेरिमेन्टर था। एक बार उसने यह जानना चाहा कि नेचुरल आदमी कैसा होता होगा। पांच बालक जन्म से ही एक एकान्त स्थान में रख दिये गये। उनसे न कोई बोलता, न उनके पास बैठता और न कुछ सिखाता-पढ़ाता। जब पाँच साल बाद वे निकाले गये तो सारे के सारे गूंगे निकले। किन्तु क्या यह आदमी उस श्रेणी में आ सकता है? वे दिमाग पर ज़ोर दे दे कर सोचने लगे कि प्लेटो से मार्क्स तक किसी विचारक ने क्या कुछ कहा है एक ऐसे 'टाइप' के विषय में। उन्हें कुछ स्मरण नहीं आया। इसी उधेड़बुन में उन्हें नींद आ गई।

जिस नंगे-पागल आदमी से प्रोफेसर प्रियव्रत को धक्का लगा था वह वास्तव में असाधारण है। उसके जीवन का न तो कोई भूत है, न कोई वर्तमान और न भविष्य। उसे स्वयम् भूत और वर्तमान का ज्ञान नहीं, भविष्य के बारे में सोचना तो दूर रहा। उसका न कोई संगी है न साथी, न कोई मित्र, न सम्बन्धी। वह इतना बड़ा कैसे हुआ यह एक रहस्य है। वह क्यों इस तरह रहता है इसे कोई नहीं जानता। वह न किसी से बोलता है, न कुछ अनाप-शनाप बकता है और न किसी को किसी प्रकार की कोई हानि ही पहुँचाता है। न उसे किसी की चिन्ता है और न किसी को उसकी। सड़क पार करता तो इस तरह जैसे कोई हाथी झूम झूम कर चल रहा हो। उसे ठुड्डी पर हाथ रख कर बैठे देख कर सहसा 'विदेह' का स्मरण हो आता।

अस्थिपिंजर पर कहवा के रंग का चमड़ा जैसे किसी ने जल्दी में चढ़ा दिया हो जिसमें स्थान स्थान पर शिकन देख पड़ती है। बढ़ी हुई दाढ़ी और लम्बे लम्बे बाल उसके चेहरे को घेरे हुये हैं। बीसवीं सदी के इस नगर में वह चलता फिरता आदि-पुरुष सा लगता है। बाजार के लड़कों में से कुछ उसके बारे में पूछने पर यह कहते कि "अरे साहब, यह आदमी आज से चन्द साल पहले बम्बई गया था--ऐक्टर बनने, लेकिन ऐक्टर बनना कोई हँसी खेल थोड़े ही है, सो निराश हो कर यह पागल हो गया और अब मारा मारा फिरता है।" कल्लन साइकिल की दूकान वाले का अनुसन्धान इससे भी गहरा था। उसका कहना था कि "यह आदमी पहले फिल्मों में गाने देता था, लेकिन एक एक्ट्रेस की मोहब्बत ने इसे दीवाना बना दिया और इसका सब कुछ लेकर उस बेवफ़ा ने यह दर्द दिया।" किशोरी हलवाई का कहना था कि इसे सट्टेबाजी ने चींटे की तरह चाट लिया। प्राइमरी स्कूल के अध्यापक पं० दातादीन का अनुमान था कि इस व्यक्ति ने इतना पढ़ा इतना पढ़ा कि पागल हो गया।

इस प्रकार अनेकानेक किंवदन्तियां उस नंगे-भूखे पागल के विषय में प्रचलित हैं। लो ग उस निरीह-अनाथ को घृणा और दुत्कार के सिवा कुछ नहीं

देते । वह मौन योगी सभी कुछ स्वीकार कर लेता है । उसे न हर्ष होता है, न आमर्ष । न उसे किसी से राग है, न द्वेष । यदि किसी साधारण व्यक्ति में ये गुण होते तो वह वीतराग कहा जाता, किन्तु इस अभागे-अनाथ को मात्र 'पागल' की उपाधि मिली है ।

उसका क्या नाम है, किसी को नहीं मालूम । किस जाति और धर्म का है, कोई नहीं जानता । कहाँ का रहने वाला है, कहाँ से आया है, इसका कोई है या नहीं--यह सब एक रहस्य है । आदमी जैसी बनावट होने के कारण वह आदमी कहा जा सकता है । वह इस धर्म-कर्म और मत-मतान्तर के संसार को एक चुनौती है । जाति-पांति, भात-भोज और इस ऊँच-नीच की दुनिया का एक प्रश्नचिन्ह है । उसकी न कोई जाति है, न कोई धर्म । उसकी न कोई बिरादरी है, न कोई फिरका । कुछ दिन पहले फादर पीटर उसे ईसा की छत्रछाया में लेना चाहते थे, लेकिन इस गुमसुम आदमी पर उनकी एक न चली । मुस्लिम बिरादरी भला एक ऐसे अकर्मण्य व्यक्ति का क्या करती । हिन्दू धर्म के दुर्ग में प्रवेश पाना तो उसके लिये असम्भव ही था ।

वह न तो नागरिक है और न मतदाता । न उसके कोई राजनैतिक विचार हैं, न कोई सामाजिक स्वार्थ । न वह किसी का नौकर है, न किसी का मालिक । न उसके पास कोई जमीन है, न जायदाद । इसलिये वह स्वतंत्र है, स्वछन्द है—वायु की भाँति । उसके हृदय में शान्ति का अथाह सागर हिलोरें लेता है । कपड़े और बिछौने न रहते हुए भी उसे खूब नींद आती है, क्योंकि उसके ऊपर बन्धन नहीं हैं और इसलिये चिन्ता नहीं है जो कि शान्ति की शत्रु है । वह न किसी का लेनदार है और न देनदार । धन के नाम पर उसके पास फूटी कौड़ी भी नहीं है ।

उसे लोग भली प्रकार एक नज़र देखते भी नहीं है । विशेष कर मध्यम और उच्च वर्ग के स्त्री-पुरुषों की तो, उसे देखकर, आँतें सक्रिय हो उठती हैं । भला एक नंगा-गंदा-पागल कोई देखने की वस्तु है । ऐसे लोग इस सभ्यता के लिये कलंक है, समाज के लिये लज्जा की वस्तु हैं, मानवता के कोढ़ हैं । ठीक

भी तो है, आखिर हमारे इस संसार में इन्हें रहने का क्या अधिकार है। ये तो 'भुवि भार भूतः' हैं। समाज पर बोझ बन कर जी रहे हैं। समाज में उसे जीने का अधिकार है जो मेहनत कर सके तथा समाज के निर्देश पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर सके। आखिर हमारा समाज और आज की व्यवस्था यह सब शक्ति पर ही तो आधारित हैं। इसे मनुष्य का पसीना चाहिये, उसका खून चाहिये और जो इसे नहीं दे सकता वह त्याज्य है, उसे इस व्यवस्था में रहने का कोई अधिकार नहीं।

वह पागल न तो अमीर है, न गरीब, न राजा, न सेठ, न अफ़सर, न क्लर्क, न विद्वान, न अनपढ़। वह अपने ही ढंग का है। करुणा और मानवता की नग्नमूर्ति। इस महामानव को दो सूखी रोटी नहीं मिलती। क्या इसलिये कि वह उद्यम नहीं करता? बल्कि इसलिये कि हमारी स्वार्थपरता की ललित कलाओं से वह अनभिज्ञ है। वह चोरी और कालाबाज़ार नहीं करता। अवसर से लाभ उठाना उसे नहीं आता। संसार में सहस्रों-लाखों ऐसे हैं जो उद्यम नहीं करते, परोपजीवी हैं, फिर भी लाखों-करोड़ों के स्वामी हैं, किन्तु वे अवसर से लाभ उठाते हैं, दूसरों का गला घोंटते तरस नहीं खाते, सहस्रों की रोटी छीनकर अपनी तिजोरी में बन्द कर लेते हैं। कितना अन्तर है—एक है दीन-हीन और निरीह, दूसरे लाखों के भगवान।

प्रोफेसर प्रियव्रत के घरेलू जीवन की यदि आधुनिक परिभाषा की जाय तो वे शत प्रतिशत सुखी कहे जा सकते हैं। उन्हें योग्य तथा सुशिक्षित पत्नी मिली है। दो प्यारे-प्यारे बच्चे हैं। एक लड़का दूसरी लड़की, क्रमशः ढाई और सात के। रहने के लिये बड़ा सा निजी बँगला, कुत्ते, दर्जनों नौकर-चाकर, बाग-बगीचा, बैंक में भारी बैलेन्स, किताबों का मुनाफा, चढ़ने के लिये मोटर और उठने-बैठने-सोने के लिये सभी आधुनिक उपकरण। प्रोफेसर का वर्तमान ही नहीं अपितु भविष्य इस से कहीं अधिक उज्ज्वल है। विश्वविद्यालय में 'हेड ऑव डिपार्टमेन्ट' होने की सम्भावना है। आश्चर्य नहीं कि थोड़े ही दिनों में वाइस चान्सलर हो जायँ। उनके सपने यही नहीं समाप्त होते थे, बल्कि उन्हें यह पूर्ण आशा थी कि एक न एक दिन वे राजदूत या गवर्नर बन जायँगे क्योंकि सत्तारुढ़ दल की प्रधान कार्यकारिणी में उनके कई सगे-सम्बन्धी और मित्र थे। यूं वे अपने छात्र जीवन में एक बार जेलखाने भी हो आये थे। इस प्रकार उनमें उच्च राजपद पाने की आवश्यकता से अधिक योग्यतायें थीं। जैसा कि कहा जा चुका है, वे काफी प्रगतिवादी विचारों के व्यक्ति थे। अपने नाम के आगे जाति न जोड़ना यह भी उन के प्रगतिवादी विचारों का एक लक्षण था। अपने श्वसुर लाला रोकड़मल के वे इकलौते दामाद थे। सौभाग्यवश लाला जी के प्रोफेसर की सहधर्मिणी, शीला जी, के अलावा कोई सन्तान न थी अतः रोकड़मल के लाखों के रोकड़ के वे एक मात्र उत्तराधिकारी थे। इसी कारण वे शीला जी से काफी दबते भी थे।

प्रोफेसर का जिस वंश से सम्बन्ध था उस के सदस्यों के नाम प्रायः बड़े ही विकट रक्खे जाते थे। यह संयोग ही था कि उनका नाम प्रियवत रक्खा गया। किस ने उन का इतना मधुर नाम रक्खा यह एक रहस्य है—ठीक उसी प्रकार जैसे किस ने अजन्ता की गुफाओं का निर्माण किया।

× × ×

प्रोफेसर प्रियव्रत की पत्नी शीला जी एक सुशिक्षित महिला थीं। उन का स्त्री-समाज में काफी आदर था; कई संस्थाओं की प्रधान, उप-प्रधान तथा कोषाध्यक्ष थीं। प्रोफेसर को सन्तोष यह था कि उन के कारण घर पर विभिन्न संस्थाओं के लगभग आधे दर्जन नौकर और चपरासी थे जिन की सेवाओं ने जीवन को सरल और सुखमय बना रक्खा था। घर पर मुफ़्त का टेलीफोन लगा हुआ था। दस-पाँच लोग कोई न कोई काम लेकर मिसेज शीला प्रियव्रत के दरवाजे पर खड़े ही रहते। इस प्रकार प्रोफेसर का जीवन दिन महीनों और वर्षों पर 'स्लेज' की भाँति फिसलता जा रहा था।

× × ×

शीला जी को आज वीमेन्स फूड काउन्सिल की बैठक में जाना था। मीटिङ्ग का समय साढ़े पाँच का था, पाँच बीस हो गये थे। ड्राइवर घंटे भर की छुट्टी लेकर गया था, लेकिन दो घंटे होने को आये नहीं लौटा। अतः मिसेज प्रियव्रत स्वयम् गाड़ी लेकर चल पड़ीं। सर्दी अधिक होने के कारण आज शाम से ही सड़क पर धुन्ध सी छाई हुई थी। सड़क पर वही पागल, जो कि प्रोफेसर प्रियव्रत से मिल चुका था, उनकी गाड़ी से टकरा कर गिर पड़ा। गलती शीला जी की थी। आस पास से लोग जुट आये। पुलिस वाले ने उन से थाने चलने को कहा। वे बड़े संकट में पड़ीं। पास की दूकान से सुपरिन्टेन्डेन्ट को फोन किया। उन्होंने फोन पर ही सिपाही को कुछ आदेश दिया। सिपाही ने नम्रतापूर्वक उनसे जाने के लिये निवेदन किया।

प्रश्न यह था कि इस घायल व्यक्ति का क्या किया जाय। सोच विचार कर वे गाड़ी की पिछली सीट पर उस पागल को लिटा कर डा० चड्ढा के दवाखाने ले गईं। डाक्टर नहीं मिले। वे काफी परेशान हो गई थीं अतः सीधे घर गईं। डा० श्रीवास्तव बुलाये गये, घायल की मरहम पट्टी हुई। एक नौकर को उन्होंने आज्ञा दी कि वह उसे ले जाकर अपनी कोठरी में रक्खे और उस की देख भाल करे। उस नंगे-पागल को पहनने के लिये प्रोफेसर के कुछ पुराने कपड़े दिये गये।

दो दिन बाद वह कुछ स्वस्थ हुआ और एक रात चुपचाप उठ कर न जाने कहाँ चला गया। मिसेज़ प्रियव्रत का विचार था कि जब वह स्वस्थ होकर जाने लगेगा तो उसे दस बीस रुपये दे दिया जायगा। उसके सहसा चले जाने की बात सुन कर शीला जी को थोड़ा सा आश्चर्य हुआ।

अखिल भारतीय जीवनदान समिति के मन्त्री सत्यस्नेह जी यथानाम तथागुण वाली कहावत चरितार्थ करते थे। सत्य और स्नेह के मूर्त्तरूप थे। मानो संसार का सारा सत्य और स्नेह उन्हीं में आकार पा कर रह गया हो। उन की जीवनदायिनी मुस्कान विख्यात थी। पराये को अपना बनाना उनकी एक महती बिशेषता थी। जहाँ जाते वहाँ अपनी हँसी से बेला-गुलाब खिला देते। दुःखियों के भगवान नहीं तो श्रवणकुमार अवश्य थे। फिर भगवान् बनने की उनकी इच्छा भी नहीं थी, क्योंकि समाज-सेवी को तो श्रवणकुमार बनने में ही आनन्द आता है।

समाज-सेवा एक महान कार्य है--हिमालय की भांति उत्तुङ्ग, सागर की भाँति गम्भीर, गंगा-जल की भाँति पवित्र। यह वह व्रत है जिसके द्वारा मनुष्य देवत्व की सीमा पार कर सकता है। आज के युग में समाज-सेवा की बड़ी ही आवश्यकता है। समाज-सेवी की समस्यायें कल पुर्जों की भांति दिन प्रति दिन जटिल होती जा रही हैं। आज का समाज-सेवक अपने को बड़ी ही जटिल परिस्थितियों में पाता है और उन से पार पाना कोई बच्चों का खेल नहीं। यह तो सत्य स्नेह जी जैसी महान आत्मायें हैं जो इस विराट कार्य को उत्तरदायित्व तथा कुशलता से निभा रही हैं।

समाज-सेवा का कोई प्रमाणिक इतिहास नहीं मिलता। केवल इतना जान लेना यथेष्ट होगा कि यह न कभी प्रारम्भ हुई और न कभी समाप्त होगी। यह एक अजस्र प्रवाह है जिसके उद्‌गम का कोई पता नहीं। सत्यस्नेह जी का विचार था--"समाज-सेवा मनुष्य के साथ आई और उस के साथ ही जायगी। जब तक मनुष्य है तब तक दुःख-दर्द रहेगा, जब तक दुःख-दर्द रहेगा तब तक उसे दूर करने वाले रहेंगे। अतः समाज के साथ समाज-सेवा और समाज-सेवी का अन्यान्योश्रय सम्बन्ध है।"

सत्यस्नेह जी को राष्ट्रीय चरित्र के पतन का बहुत बड़ा दुःख था। यां तो वे दुबले नहीं हुए थे, परन्तु उन्हीं के शब्दों में 'राष्ट्रीय चरित्र के पतन के दुःख ने उनके कोमल हृदय को झकझोर दिया था।' नवयुवकों की दशा पर तो उन्हें क्रोध भी आता था, आँसू भी। किसी भी नवयुवक को बीड़ी-सिगरेट पीते देख कर उन का कलेजा सुलगने लगता था। यों उनकी संस्था के प्रधान कार्य्यकारिणी की बैठक का सभापतित्व करते हुये निरन्तर चुरुट का आनन्द लेते रहते और सत्यस्नेह जी मन्त्री होने के कारण उनके वामपार्श्व में बैठे चुरुट की सुगन्धि से जी बहलाते। एक बार सत्यस्नेह जी ने सरदार हजारा सिंह को, जो कि उन की कार्यकारिणी के समिति के सदस्य थे, यह प्रस्ताव रखने पर तैय्यार किया था कि 'संस्था को धूम्रपान-निषेध आन्दोलन चलाना चाहिये।' सरदार जी प्रस्ताव रखने ही जा रहे थे कि ब्रजबासी लाल जी ने उन्हें आँख मार कर बैठा दिया। बात बिगड़ते बिगड़ते रह गई। कारण ब्रजबासी जी स्वयम् सिगरेट पीते थे। सत्यस्नेह जी झेंपे तो किन्तु कार्य्यकारिणी के सदस्यों का लिहाज़ तो करना ही पड़ता है।

सत्यस्नेह जी अपने आन्दोलन के सभी कार्यकर्ताओं तथा कर्मचारियों के साथ भाई जैसा व्यवहार करते थे। अपने कार्य्यालय के क्लर्कों और कर्म्मचारियों को कभी कभी अपने साथ बैठाते और उन्हें अपने साथ चाय वगैरह भी संस्था के खर्चे पर पिलाते। उन का कहना था कि यह विश्व एक परिवार है और हम सब उस के सदस्य हैं। पेशे से किसी को छोटा बड़ा नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति इस देश का राजा है। इस जनतन्त्र के युग में ऊँच-नीच, भेद-भाव नहीं चल सकता। छुआछूत और वर्ण-भेद को तो वे समाज का कोढ़ मानते थे। अगर उनका वश चलता तो एक दिन में सारे संसार से इस रोग को समूल नष्ट कर देते। किन्तु मजा यह था कि उनके कार्य्यालय के लोग उन से खुश नहीं थे। धनई माली, जिस के यहाँ कम्युनिस्ट नेता धनुर्धर जी अक्सर आया करते थे, कहा करता कि "सत्यस्नेह जी बड़े ही ढोंगी हैं, अपने तो आठ सौ रुपये गाँठते हैं और हमें मिलता है--पैंतीस। यह कैसा भाईचारा है? हुँह।" किन्तु

स्वार्थान्ध धनई यह भूल जाता था कि सत्यस्नेह जी ने इस संस्था को चलाया है। वे संस्था के चलते फिरते इतिहास हैं। आरम्भ में अपने घर से कागज-कलम ला ला कर वे संस्था का पत्र-व्यवहार किया करते थे। सबेरे आठ बजे से रात के आठ बजे तक डटे रहते थे। अपने घर से मोमबत्तियाँ लाकर संस्था के कार्य्यालय में प्रकाश करते थे। अब जब बिजली के लट्टू और पंखे लग गये हैं तब तो सभी आलोचना कर सकते हैं, किन्तु जिन कठिनाइयों में सत्यस्नेह जी ने काम किया था उनमें कोई अन्य एक दिन भी नहीं टिक सकता। लोग तो आलोचना के सिवा कुछ जानते ही नहीं। इन जीते जागते शहीदों के बलिदान और त्याग का लोग मूल्याङ्कन नहीं कर सकते। अब अगर इतनी कठिनाई के बाद सत्यस्नेह जी आठ सौ रुपये वेतन पाते हैं तो ऐसी क्या बात है। उन के साथ के कितने लोग लखपती और करोड़पती हो गये। फिर यदि समाज-सुधारकों का पारिवारिक जीवन ही सुखी नहीं रहेगा तो वे सेवा-कार्य्य क्या करेंगे। इसलिये धनई की आलोचना निमूॅल थी। सत्यस्नेह जी और उस में वही अन्तर था जो कि ऊँट और बकरी में होता है। ऊँट और बकरी, ऊँट और बकरी ही रहेंगे चाहे जो कुछ भी कर दिया जाय।

जो कुछ भी हो सत्यस्नेह जी महान् थे, क्योंकि लोग उन्हें महान् मानते थे। उनकी योग्यता का लोहा सभी मानते थे। उच्च अधिकारियों से लेकर मन्त्री तक पर वे देखते देखते मोहनी डाल देते थे। शिक्षा सम्बन्धी उनकी क्या योग्यतायें थीं यह कोई नहीं जानता था, क्योंकि किसी की वेतन और शिक्षा सम्बन्धी योग्यतायें नहीं पूछना चाहिये। यों वे समाज-सुधार पर लगभग आधी दर्जन पुस्तकें लिख चुके थे, हाँलाकि अफवाह यह थी कि ये पुस्तकें उन्होंने अपने एक क्लर्क से लिखवाया था, लेकिन अफवाह का क्या भरोसा।

सत्यस्नेह जी उन महान् आत्माओं में से एक थे जिनका नाम इतिहास के पन्नों में तो नहीं लिखा जाता, लेकिन अखबारों में प्रायः रोज निकलता रहता है। पत्रकारों से उनकी खूब छनती-बनती थी। उनकी सेवायें महान् थीं। कोई इतिहासकार उसे नहीं आँक सकता, क्योंकि इतिहास कुछ समय के बाद

लिखा जाता है। किन्तु उनकी समसामयिक पत्र-पत्रिकाओं को उनके भगीरथ प्रयत्नों के मूल्यांकन का सौभाग्य अवश्य प्राप्त था। दुःख तो यही था कि पत्र-पत्रिकाओं से इतिहास के स्थान पर पंसारी के दूकान पर मिर्च-मसालों की पुड़िया बन जाती थी।

सत्यस्नेह जी में मात्र एक कमज़ोरी थी। वह यह कि वे प्रो० प्रियव्रत की सहधर्मिणी शीला जी से बहुत घबराते थे। शीला जी जीवनदान समिति की कोषाध्यक्ष थीं। वे सत्यस्नेह जी की नस-नस पहचानती थीं, और फिर कामरेड धनुर्धर उनके एक सम्बन्धी होने के कारण उन पर छाये हुये थे।

सत्यस्नेह जी का व्यक्तिगत जीवन चाणक्य और नाना फड़नवीस से काफी प्रभावित हुआ था। उनका यह विचार था कि किसी को पनपने नहीं देना चाहिये। धनई से उन्होंने एक सबक सीखा था-वह यह कि किसी भी उठते हुये व्यक्ति को मेंहदी की तरह कतर देना चाहिये। सत्यस्नेह जी की यह चाल खूब चलती रही, लेकिन आजकल सत्यस्नेह जी कामरेड धनुर्धर से बहुत परेशान थे। कामरेड ने दौड़धूप करके उनकी संस्था के कर्म्मचारियों की 'यूनियन' बनवा दिया था। यूनियन की माँगे कुछ इस प्रकार थीं—

१—सत्यस्नेह जी का वेतन घटाया जाय और निम्न स्तर के कर्म्मचारियों की तनख्वाह बढ़ाई जाय।

२—सत्यस्नेह जी को चढ़ने के लिये जीप और रहने के लिये बँगला मिला है, यह संस्था के आदर्शों के विरुद्ध है। इस सम्बन्ध में उचित कार्य्यवाही की जाय।

३—सत्यस्नेह जी संस्था के चपरासियों आदि से घर का काम करवाते हैं, यह अन्याय रोका जाय।

४—संस्था के कर्मचारियों को उचित छुट्टियाँ दी जाँय और मुफ़्त चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाय।

५—सत्यस्नेह जी संस्था के किसी भी कर्मचारी के व्यक्तिगत जीवन पर कोई बन्धन न रक्खें।

यह पंचसूत्री कार्य्यक्रम 'अखिल भारतीय जीवनदान समिति कर्मचारी-यूनियन' ने रक्खा। सत्यस्नेह जी के होश ठिकाने नहीं थे। उनके पैरों तले से धरती खिसक गई। उनके जी में आता कि कामरेड धनुर्धर और धनई को देश-निकाला दे दें, लेकिन विवश थे। अपनी हरी भरी फुलवारी का इन वन्य पशुओं द्वारा चारण देख कर वे व्यथित हृदय बन गये थे।

चार महीने पूर्व सत्यस्नेह जी ने एक फोटोग्राफर को पाँच रुपये दे कर उस पागल की तस्वीर खिंचवाई थी और उसे एक पैम्फलेट में निकलवाया था। तस्वीर के नीचे अन्य बातों के अलावा लिखा था—हमारी संस्था देश के इन्हीं लाखों नंगे-भूखों की सेवा तथा सुधार के लिये आप से सहायता तथा सहयोग चाहती है। जिस प्रकार सागर से चार बूँद पानी निकल जाने पर सागर की महत्ता नहीं घटती उसी भाँति एक छोटी सी रकम आप के लिये कुछ नहीं है ,किन्तु इससे देश के लाखों गरीब नंगे-भूखों का कल्याण होगा। अन्त में अन्य कुछ और उपयोगी बातों के अलावा गोस्वामी तुलसीदास की चौपाई लिखी थी--

'परहित सरिस धरम नहिं भाई, पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।'

'परहित बस जिनके मन माहीं, तिन कँह जग दुर्लभ कछु नाहीं।'

नीचे विनीत सत्यस्नेह जी थे।

यूनियन की बैठक में कामरेड धनुर्धर ने वही पैम्फलेट ले कर सत्यस्नेह जी की तथा संस्था की खिल्लियाँ उड़ाई थी। उन्होंने कहा था—"नंगे-भूखों के नाम पर हजारों-लाखों रुपये जनता से एकत्रित किया जाता है, लेकिन उस रुपये का होता क्या है। सत्यस्नेह जी आठ सौ रुपये डकारते हैं। उन्हें रहने के

लिये आलीशान बँगला मिला हुआ है जिसके दरवाजे और खिड़कियों पर खद्दर के पर्दे लटकते हैं। भारत की अबोध जनता का पसीना सत्यस्नेह जी की जीप में पेट्रोल बन कर जल रहा है। साथियों, वह दिन दूर नहीं जब सारे संसार से अन्याय और उत्पीड़न का नाम उठ जायगा। गरीब अब और अधिक दिन नहीं रुक सकता। सारा संसार शीघ्र ही 'लाल' होने वाला है। आप लोगों से विशेष रुप से मेरा अनुरोध है कि आप उस महासंक्रान्ति के लिये कटिबद्ध रहें। आप इसका निश्चय कर लें कि आप सभी साथी अपनी संस्था से अन्याय और पक्षपात का अन्त करके रहेंगे।" इसके अलावा धनुर्धर जी और जाने क्या क्या बोलते रहे। इसके बाद कामरेड धनई उठे, उन्होंने गला साफ करते हुये कहा--"बाबू लोगों तथा भाइयों! हमारे यहां जितनी बेइन्साफी है उतनी कहीं नहीं। हमारे अफ़सर तो मालपुवा खाँय और हम सूखी रोटी को तरसें। वे मोटर में घूमें और हमारे पास साइकिल के पंचर जुड़वाने तक के पैसे नहीं। उनके यहां तो पचासों गज कपड़े के पर्दे लटकें और हम तन ढकने को तरसें। किसी की मेजें रंगीन कपड़े ओढ़े नई नवेली बनी रहती हैं और हमारे बाल बच्चे नंगे डोलते हैं। तिस पर सत्यस्नेह जी कहते हैं कि हम सब भाई हैं। अच्छा है यह भाईचारा। भाइयों, आज से अठारह साल पहले जब सत्यस्नेह जी यहां आये, उससे दो साल पहले से मैं संस्था के कार्य्यालय में चपरासी-माली-चौकीदार-भण्डारी सभी कुछ था। आप विश्वास नहीं करेंगे, सत्यस्नेह जी उन दिनों चालीस रुपये पाते थे और मैं पच्चीस। अब वे आठ सौ लेते हैं और मुझे कुल पैंतीस मिलता है। क्या बीस साल की खिदमत का इनाम सिर्फ १०) महीने ही मुझे मिलना चाहिये ?"

"हरगिज नहीं।" एक स्वर में बीसों आवाजें गूँज उठीं।

"भाइयों, उन दिनों मैं काफी हट्टा-कट्टा था। ढाई मन का बोरा उठा कर मैं कोसों ले जा सकता था। दस साल पुरानी मेंहदी बायें हाथ से उखाड़ लेता था। लेकिन अब ठीक से देख भी नहीं पाता, रात को रतौंधी होती है, हाथ

काँपता है, लेकिन क्या करूँ पेट बड़ा पाजी है।" पेट पर जोर से हाथ मारते हुये धनई बैठ गये।

धनई के बाद मुन्शी उल्फतराय उठे। उन्होंने फरमाया--"भाई धनई राम ठीक कहते हैं। मुझे ठीक ठीक याद है जब हमारे मन्त्री जी पहले पहल यहाँ आये थे तो माशूक़ की कमर की तरह दुबले-पतले थे, लेकिन अब तो उनकी आँखों पर चर्बी चढ़ गई है। अपने मतलब के लिये हमेशा औरों को बेवक़ूफ़ बनाते रहे, लेकिन अब यह जादू और नहीं चलने का।" मुंशी जी ने खूब ज़बान का जंग छुड़ाया। इसके बाद कई वक्ताओं ने भाषण दिया और सभा समाप्त हुई।

सत्यस्नेह जी ने जब यह सब सुना तो छिपकली की कटी हुई दुम की तरह छटपटा उठे।

"मनीआर्डर !" डाकिये ने हॉस्टेल के एक कमरे के सामने आवाज लगाई। बाहर आकर एक युवक ने मनीआर्डर पर दस्तखत किये। डाकिये ने थैले से सौ का एक नोट निकाल कर युवक के हाथ पर रख दिया।

"दस दस के दो।" युवक बोला। "फुटकर नहीं है।" डाकिये ने कूपन फाड़ कर देते हुये कहा। युवक कुछ नहीं बोला। रुपया लेकर कमरे में चला गया।

"कहाँ से मनीआर्डर आया है?" कमरे में बैठे हुए दूसरे नवयुवक ने प्रश्न किया।

"टाइम्स आव इन्डिया से। मैंने एक तस्वीर इलस्ट्रेटेड वीकली में भेजी थी उसी पर यह फर्स्ट प्राइज मिली है।"

"कैसी तस्वीर ? किस की तस्वीर ?"

"एक पागल की। बाजार में एक नंगा-पागल है। एक दिन प्रो० प्रियव्रत के साथ बाजार से गुजर रहा था तभी उसे देखा था। जब यह फोटोग्राफी की प्रतियोगिता निकली तो मैंने उसका 'स्लीपिङ्ग पोज़' लेकर भेज दिया था, और अब यह इनाम मिला है।"

दूसरा युवक चलने के लिये उठता हुआ बोला—"विनय, तुम बड़े भाग्यवान हो।"

"अरे रे रे, बैठो न मोहन। कैसे चल दिये।"

"नहीं भाई मुझे कुछ काम है।" मोहन ने उठते हुए कहा।

"शाम को 'ब्लाइण्ड लव' देखने चलोगे क्या ?"

"मुझे आज काम है।"

मोहन कमरे के बाहर चला गया।

मोहन और विनय स्थानीय विश्वविद्यालय में राजनीति से एम. ए. कर रहे थे। दोनों में काफी नहीं पटती थी, लेकिन साधारण मेलजोल अवश्य था।

मोहन पढ़ने में बड़ा ही तेज था । विनय बड़े बाप का बेटा था । रुपये की कमी नहीं थी । मोहन गरीब था । फीस देना उसके लिये अपार था ।

मोहन बाजार में पहुंचा तो सहसा उसे उस नंगे पागल का स्मरण हो आया जिसकी तस्वीर ने विनय को सौ रुपये का इनाम दिलवाया था । कुछ दूर आगे चलने पर वह पागल फुटपाथ पर एक लैम्पपोस्ट के सहारे पैर फैलाये बैठा हुआ देख पड़ा । शायद वह धूप ले रहा था । मोहन एक मिनट के लिये रुक गया । उस के मन में करुणा का स्रोत उमड़ आया । 'यह वही दुखिया है जिस की तस्वीर ने आज विनय को सौ रुपये का इनाम दिलवाया है, लेकिन विनय इसे एक पैसा भी नहीं देगा । वह इन रुपयों से 'ब्लाइण्ड लव' जैसी सड़ी फिल्में देखेगा और काफी हाउस में दावतें देगा । समाज कितना स्वार्थी है । इस अन-जान पागल से भी लोग कुछ न कुछ लाभ उठा ही लेते हैं । तो फिर यह समाज के लिये भार क्यों है ? इसे इसका अधिकार क्यों नहीं मिलता ?' उसके सामने भर्र से एक मोटर आकर रुक गई । उस में से सूखी पूड़ियों और मिठाई के दो टोकरे ड्राइवर ने निकाल कर फुटपाथ पर रक्खे । एक सेठ जी और उन की सेठानी बाहर निकले । गरीब लड़के और भिखमंगे चींटों की तरह मोटर के पास घिर आये । पागल ज्यों का त्यों बैठा रहा । कुछ देर में मोटर चली गई । पागल के हाथ पर एक सूखी पूड़ी थी । मोहन आगे बढ़ गया ।

मोहन को लगा जैसे वह पागल उसका ही एक निखरा रूप है । कितना अच्छा होता यदि वह यह सब न होता जो अब है । फिर उसे लगा कि उस के भीतर कहीं अपनापन है जो उसे सदैव दबाये रहता है, और इसी से उस में विस्मृति नहीं आ पाती ।

कामरेड धनुर्धर स्थानीय साम्यवादी दल के प्रधान थे। नगर में कम्युनिस्ट कार्य्य के लिये काफी बड़ा क्षेत्र था। नगर का हर मजदूर, मालिक, विद्यार्थी, धनुर्धर जी को जानता था। उन की वाणी में ओज ही नहीं अपितु अग्नि भी थी। जहाँ बोलते लोगों को इस तरह पिघला देते जैसे लोहार की भट्टी में लोहा पिघल जाता है। एक सफल नेता की सारी विशेषतायें उनमें थीं— जैसे झूठ बोलना, तिल का ताड़ बनाना, दलबन्दी करना आदि आदि। फिर भी कामरेड धनुर्धर में कुछ अच्छाइयाँ भी थीं। वे रुकावटों के रुकावट भी थे। यह उन्हीं का बूता था जो सत्यस्नेह जी जैसे गुरुघण्टाल को नीचा देखना पड़ा था। कामरेड धनुर्धर स्वयम् जादू थे, उन पर भला किसी की मोहनी क्या चलती। उन का जादू तो यों ही सिर चढ़ कर बोलता था। जैसे दुधमुँहे बच्चे को देख कर लोग उसे गोद उठा ही लेते हैं उसी प्रकार धनुर्धर जी के विचारों और तर्कों की चाहत थी।

मार्क्सवादी कहते हैं कि इतिहास केवल वर्ग-संघर्ष है। प्रारम्भ से आज तक चारों तरफ वर्ग-संघर्ष छिड़ा हुआ है। पूँजीपति मजदूर का खूब शोषण करते हैं। सरकार पूंजीपतियों का साथ देती है। अतः इस व्यवस्था का अन्त होना ही चाहिये। धनुर्धर जी नगर में मार्क्स के मात्र प्रतिनिधि और उत्तराधिकारी थे। यह उनका ही दम था जो विश्वविद्यालय, दफ़्तरों, कारखानों और संस्थाओं में 'वर्ग-संघर्ष' उठ खड़ा हुआ था। और यह वर्ग-संघर्ष कितना आवश्यक भी है शोषण, असमानता, अत्याचार और पक्षपात का अन्त करने के लिये। यह और बात थी कि धनुर्धर जी स्वयम् दोहरा जीवन व्यतीत करते थे। घर में बड़ा ही सुखी जीवन था उनका। उनको मालती जी ऐसी सुशिक्षित पत्नी मिली थीं। पता नहीं 'वर्ग-संघर्ष' के सफल होने पर लोगों की पत्नियां कैसी होंगी? अगर मालती जी न होतीं तो धनुर्धर जी आज चलते फिरते नजर न आते। उन में वह ओज न होता, वह धुन न होती, वह बल न होता, और यह सब इसलिये न होता कि धनुर्धर जी को घर का सुख न मिलता। उदाहरण

स्वरूप यह लिया जा सकता है कि धनुर्धर जी को चेरी की पुडिङ्ग बहुत अच्छी लगती थी। मालती जी जाने कहाँ कहाँ से चेरी मगाँ कर रेफ्रिजेरेटर में रखतीं। लखनऊ के दशहरी आम जाड़ों में भी उनके रेफ्रिजेरेटर में मिल सकते थे। रोज शाम को अगर 'मटन' न मिले तो समझिये बेड़ा गर्क। दूसरे ही दिन से धनुर्धर जी में वह तेज, वह ब्लेड जैसा सर्र से काटनेवाला तर्क न रह जाय। तो इस तरह धनुर्धर जी एक बड़े नेता थे और मालती जी परदे के पीछे मूक, धीर-गम्भीर नेता बनाने वाली।

मालती जी धनुर्धर जी के खाने-पीने, कपड़े-लत्ते, ओढ़ने-बिछाने, बैंक-बैलेन्स का ही हिसाब नहीं रखती थीं, अपितु crisis के समय पार्टी के कामों में हाथ बँटाती और सलाह मसविरा देतीं।

धनुर्धर जी के पास अपना एक मासूम सा बँगला था और एक भोली सी कार भी थी। कहते हैं धनुर्धरजी के श्वसुर जी ने यह सब मालती जी को दिया था, लेकिन साहब क्या कहा जाय, लगता था कि उनका बँगला विरोधी दल के नेताओं की आँखों में चुभा जाता है और उनकी कार उनकी छाती पर चलती है। विरोधी दल के एक सदस्य हर्षनाथ का कहना था—"धनुर्धर जी जब से पढ़ते थे मैं उन्हें जानता हूँ। फीस देने को पैसे नहीं थे। जाड़ों में नंगे पैर डोलते थे। फिर इनके श्वसुर भी कोई इतने बड़े आदमी नहीं जो कार और बँगला दे डालें। अगर वे धनी होते तो क्या धनुर्धर के सिवा और कोई योग्य वर ही नहीं मिलता उनकी लाड़ली बेटी के लिए।" इस प्रश्न को लेकर दोनों दलों के 'छोटे भैय्यों' में हाथापाई भी हो गई थी, किन्तु राजनीति में सब क्षम्य है, इसलिये इसको नजरअन्दाज कर देना चाहिये। किसी 'आँनरेबूल लीडर' के व्यक्तिगत जीवन से किसी को क्या मतलब ?

धनुर्धर जी के पक्ष में इतना कह देना काफी होगा कि यदि साधुओं के अखाड़े आकाशवृत्ति से चल सकते हैं, अगर सैकड़ों मूर्तियों का भोग लग सकता है तो क्या धनुर्धर जी ऐसे जनसेवक के घर का खर्चा कोई बड़ी चीज़ है।

धनुर्धर जी कहा करते कि सत्यस्नेह जी जैसे समाजसेवी नये जमाने के महन्त हैं और ये सरकारी अफसर feudal lords (बड़े जमींदार)—वर्ग संघर्ष चल रहा है, नये रूप में। पर स्वयं धनुर्धर क्या थे? महन्त या जागीरदार, साधारण व्यक्ति या सफेद हाथी? इतिहास के ये नई उपज हैं। नया दर्शन, नया संदेश, नये झगड़े-लड़ाइयाँ, एक नये अन्दाज में लेकर आये हैं।

धनुर्धर जी पार्टी की बैठक से लौट कर आये। जैकेट उतार रहे थे। मालती जी कमरे में आईं। उन्हें देखते ही वे बोल उठे—"यह मेरे शू पर फुन्नन ने कैसी पालिश लगा दी, लेदर खराब हो गया। देख लेना चाहिये, नौकर क्या करते हैं, कैसा सामान लाते हैं। तुमने पैसा दिया होगा 'किवी' के लिए, लाया होगा वह 'बटरफ्लाई'।"

"देखूँगी।" मालती जी ने नन्हा सा जवाब दिया।

"आज क्या हुआ मीटिङ्ग में?" मालती जी ने प्रश्न किया।

"होता क्या, सत्यस्नेह फँसे हैं। मेरे विरुद्ध हर्षनाथ को खूब भड़काया था। अब उन्हें भी पता चलेगा कि किसी के घर न्योता दिया था।"

"ग्राउण्ड क्या है?" मालती जी ने जैसे कविता की एक समस्या रख दी।

"यही एक नंगा-पागल है। उसकी तस्वीर छपवा कर खूब चन्दा इकट्ठा किया गया है।"

"उसे हम भी तो 'यूटिलाइज़' कर सकते हैं।" मालती जी ने जैसे भविष्य की गहराइयों में देखते हुये कहा।

"देखेंगे।" धनुर्धर ने अर्थ भाँप लिया।

———

"मैं जिन्दा नहीं-मुर्दा नहीं-शरीर भी नहीं हूँ-लाश भी नहीं। मैं, मैं नहीं-तुम नहीं-यह नहीं-वह नहीं-अपना नहीं-पराया नहीं। हाय! फिर मैं क्या हूँ? मैं क्या हूँ-कौन हूँ-कैसा हूँ? मोहनी, तू कहाँ है? हाय! तेरी बहुत याद आती है, सीने से तस्वीर लगाता तो हूँ लेकिन क़रार नहीं मिलता। यहाँ की एक एक चीज तेरी याद बन गई है। हर चीज मुझ में चुभती चुभती चली जाती हैं। मैंने तुम्हारी याद को कितना सँजो कर रक्खा है, तुम क्या जानो। और मैं तुम्हें याद तो करता ही नहीं, क्योंकि तुम्हें भूला ही कब था। तुम्हें शायद याद भी न हो, लेकिन मुझे याद ही नहीं मेरे पास निशानियाँ हैं--जब हम एक शाम उस पार्क में घूमने गये थे, उस दिन जो 'पोटेटो चिप्स' तुमने खाया था उसके पैकेट को मैंने अभी तक सम्हाल कर रक्खा है। एक रोज जब तुम्हारे सैण्डिल का बक्सुआ टूट गया था तो मैं उसे उठा लाया था, आज भी वह मेरी कमीज की जेब में पड़ा है। तुम्हारी हर चीज मैंने सम्हाल कर रक्खा है। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी हर चीज को—तुम्हारे द्वारा छुई गई हर चीज को एकत्रित करके एक म्यूजियम खोल दूँ। वह पुलिया जहां हमने पहले पहल बैठ कर बातें की थीं अब भी वैसी ही है, ज़ालिम। सब कुछ वैसा ही है सिर्फ हम वैसे न रहे।"

"तुम मुझे कितना चाहती थीं। बीसवीं सदी के कल पुर्जों में उलझा मेरा जीवन कितना सुलझ गया था। मैंने तुमसे पूछा था-"छोड़ तो नहीं जाओगी?" तुमने कहा था-"नहीं।" "पल भर को भी नहीं?" तुमने 'हाँ' कर दिया था।

और याद है तुम्हें जब मैंने Paradise Lost से ये पंक्तियाँ सुनाई थीं-

'What thou art is mine.
Our state cannot be severed
We are one, one flesh
To lose thee were to lose myself.'

फिर तुमने कहा था-

'No no, I feel
The link of nature draw me : flesh of flesh,

Bone of my bone thou art and from thy state,
Mine never shall be parted weal or woe.'

"मुझे कितना सुकून मिला था तब। जैसे सारे शरीर में बरफ फैल गया था। अंग अंग में झुरझुरी होने लगी थी।"

'I have been faithful to thee Cynara! in my fashion'

"फिर आया वह तूफान। हम बिछड़ गये। लगता है अब हम नहीं मिल पायेंगे। तुम्हारे घर वाले कितने पाषाण हृदय हैं। सोचा था तुम न रहोगी तो फिर मेरे जीने का उद्देश्य क्या। चाहता था मर जाऊँ। पर सोचा—और सोचना पड़ा—कि अभी तो जीवन लम्बा है शायद हमारी साध पूरी ही हो जाय, और फिर मेरा इण्टरव्यू भी एक सरकारी दफ्तर से आया था। लेकिन यह सब मुझे नहीं रोक सकते थे। मुझे सहसा ध्यान आया कि मुझे एक बहुत बड़ा काम करना है। अपने लिये, तुम्हारे लिये, समाज में रहने वाले कितने ही अपने और तुम्हारे जैसों के लिए, आने वाली पीढ़ियों के लिये, प्राकृतिक न्याय और प्रेम के महान आदर्शों के लिये! वह काम है 'डिक्टेटर' बनना। मैं चाहे जैसे भी हो डिक्टेटर बनूँगा। मेरा पहिला काम होगा—परिवार नाम की संस्था को उखाड़ फेकना। यही एक ऐसी संस्था है जो व्यक्ति को अपनी शृंखलाओं में बाँधे रहती है। इसमें व्यक्ति का स्वचालित विकास नहीं हो पाता। यह उसमें बचपन से ही दासत्व के बीज बोती है और उसके प्राकृतिक गुणों को नष्ट कर देती है। यह संस्था मानवजाति के लिये अभिशाप है। मैं इसे छिन्न-भिन्न करके जीवन का एक नया रूप रक्खूँगा—संसार के सामने।"

"इस समय तो जी में आता है कविता करूँ तुम पर, तुम्हारे हर भाव पर, तुम्हारे हर शब्द पर, हर मुस्कान पर एक एक महाकाव्य लिख डालूँ। मेरे पास

क्यारियों में हल्के लाल रंग का फ्लॉक खिला हुआ है। भाव उठते हैं—कुछ ऐसे—

'फ्लॉक पुष्प से सरस, सजल नाखून तुम्हारे,
और डेलिया की पंखुरियों से वे कोमल होठ।
सन फ़्लावर सा खिला हुआ वह सुन्दर मुखड़ा,
वरबीना सी नीली नीली आँखे करतीं चोट।

"मैं बहुत बड़ा कवि बनूँगा। धन्यवाद तेरा, मोहनी, तूने दर्द तो दिया पर उसके साथ कविता दी। मैं युग बदल दूँगा। विद्रोह लाऊँगा—आधुनिक कविता में।"

"वह देखो एक कार आकर रुकी। जी में होता है 'मेरी राख' बिछी हो सड़क पर दूर तक, बहुत दूर तक और उस पर तुम्हारी कार चलती जाय, चलती जाय, बस चलती ही जाय। न सड़क खत्म हो, न कार की गति में बाधा पड़े। कुछ ऐसा भाव आता है—

O handful of my dust !
My humble dust !
Lay scattered on the road ;
And be pressed and pressed
Under your pretty automobile.

"लेकिन जाने क्यों दिमाग थका सा जा रहा है। भूख लग आई है।"

पार्क के हरे लॉन पर लेटा हुआ विनय उठा। उठ कर एक मूँगफली वाले के पास गया। इकन्नी फेंकी; मूँगफली पतलून की जेब में डाली, साइकिल पर चढ़ा और हॉस्टेल रवाना हुआ। थोड़ी दूर चलने पर वह साइकिल पर से उतर गया। वही पागल जा रहा था। वह ध्यान से उसे देखने लगा। विनय कह उठा—"संसार इसे नहीं समझ पाया है, इसमें इसका क्या दोष। ठीक उसी

तरह जिस तरह मोहनी के घर वाले मुझे नहीं समझ पाये हैं। काश, मैं अगर ऐसा भी हो जाता तो लोग मुझ पर तरस तो खाते। लेकिन मैं ऐसा कैसे हो सकता हूँ। मेरे ऊपर बन्धन हैं, सामाजिक प्रतिष्ठायें हैं—उनका पालन तो करना ही पड़ता है। यह पागल तो नेचुरल है और मैं अननेचुरल, फिर मैं ऐसा कैसे हो सकता हूँ।"

पागल कुछ दूर पर खड़ा अपने आप मुस्कुरा रहा था। विनय साइकिल पर चढ़ा और चला गया।

कामरेड धनुर्धर के मस्तिष्क में एक नई योजना जन्म ले रही थी । वे नगर के भिखमंगों की एक यूनियन बनाने में लगे थे । जब मजदूरों की, विद्यार्थियों की, धोबियों की, लेखकों और कवियों की यूनियनें थीं तो क्या भिखारी यूनियन नहीं बन सकती । विशेषकर ये बेचारे तो बहुत ही सताये हुये हैं । समाज में इन्हें घृणा और दुत्कार के सिवा कुछ नहीं मिलता । आखिर इनके भी तो अधिकार हैं, इन्हें भी तो जीने का हक है । और सत्यस्नेह जी जैसे समाजसेवी इन्हीं के नाम पर लाखों रुपये इकट्ठा करते और मौज करते हैं । वस्तुतः सत्यस्नेह जी को रगड़ने के लिए ही वे भिखारी यूनियन बनाना चाहते थे, किन्तु बाह्यरूप से भिखारी यूनियन के उद्देश्य और आदर्श बहुत ऊँचे थे ।

भिखारी यूनियन के उद्देश्य कुछ ऐसे थे—

१. नगर के सारे भिखारियों को संगठित करना और उनमें स्वाभिमान की भावना उत्पन्न करना ।

२. ऐसे भिखारियों की सहायता करना जो कि पंगु और विवश हैं ।

३. बीमार भिखारियों की परिचर्य्या और सेवा-सुश्रूषा का प्रबन्ध करना ।

४ ऐसे संगठनों और व्यक्तियों से खुल कर संघर्ष जो कि गरीब भिखारियों के नाम पर चन्दा इकट्ठा करते हैं पर उन्हें देते कुछ नहीं ।

५. यूनियन में ऐसे भिखारी भर्ती करना जोकि सक्रिय भिखारी हों । 'सक्रिय भिखारी' की परिभाषा कार्य्यकारिणी पर छोड़ी गई ।

इन पांच खम्भों पर भिखारी यूनियन का ढचर खड़ा हुआ । पहले तीन उद्देश्यों की पूर्त्ति कैसे होगी, धन और साधन कहां से आयेगा—इसका उद्देश्य पत्र में कोई जिक्र नहीं था । वास्तव में यह ढचर सत्यस्नेह जी को नीचा दिखाने के लिए खड़ा किया गया था ।

यूनियन के प्रधान बने धनुर्धर जी और मन्त्री का स्थान विनय को मिला । विनय ने राजनीतिक कैरियर चुनने का फैसला किया था और फिलहाल

"भिखारी यूनियन' का सचिव-पद कोई बुरा नहीं था। प्रसिद्धि तो शनैः शनैः ही मिलती है। कोषाध्यक्ष का पद लल्लू भिखारी को मिला। चार उप-सभापति चुने गये—छबीले, पारस, छब्बन और हरखू। अल्प संख्यकों का भी पूरा ध्यान रक्खा गया। रज्जन मियाँ को ज्वाइण्ट सेक्रेटरी का पद मिला।

'भिखारी यूनियन' का समाचार बिजली की तरह नगर भर में फैल गया। धनुर्धर जी की भूरि भूरि प्रसंशा होने लगी। केवल सत्यस्नेह जी और विरोधी दल वालों ने इसे एक 'यूटोपिया' (स्वप्न जो पूरा न हो) बताया। फिर भी नगर के सहृदय विद्यार्थी वर्ग और मजदूरों ने धनुर्धर जी के प्रयास की सराहना की। कुछ स्थानीय समाचार पत्र—जिन्हें धनुर्धर जी Capitalists' oracle कहा करते थे– चुप रहे, किन्तु उनकी पार्टी के पत्र 'ज्वालामुखी' ने भिखारी यूनियन का खूब प्रचार किया।

भिखारी यूनियन की कार्य्यकारिणी की पहली बैठक एक स्थानीय पार्क में हुई। धनुर्धर जी ने नये सदस्यों की भर्ती का प्रस्ताव रक्खा। कार्य्यकारिणी ने नये सदस्यों की भर्ती के प्रश्न पर विचार प्रारम्भ किया—धनुर्धर जी ने 'पागल' का नाम प्रस्तावित किया। लल्लू भिखारी ने एक भारी सी गाली देते हुए कहा—"वह तो भिखारी है ही नहीं। साथ ही वह हम लोगों की बिरादरी से बाहर है, फिर कैसे उसे भरती किया जा सकता है। हमारी यूनियन तो ऐसे ही लोगों को भरती कर सकती है जो असली भिखारी हों।"

"लेकिन भाई, उसे भिखारी बनाया तो जा सकता है।" धनुर्धर जी ने बात सम्हालते हुये कहा।

छब्बन बोला –"जब अभी सैकड़ों भिखारी बाकी हैं—भरती होने को, तो अभी नया भिखारी बनाने की क्या जरूरत ?"

"फिर वह किसी बीमार भिखारी की सेवा भी तो नहीं कर सकता।" —हरखू ने कहा।

रञ्जन मियाँ – जिनका धनुर्धर जी बाह्यरूप से लिहाज करते थे—बोले—"अजी सद्र साहब, छोड़िये भी आप किस निठल्ले की बात करते हैं, और वह तो ज़हमत जाहिला है, उसे यहाँ लाकर क्या कीजियेगा।"

"ठीक तो है कामरेड, अगर वह 'सक्रिय भिखारी' नहीं है तो संस्था के विधान के अनुसार उसे हम कैसे ले सकते हैं।" विनय ने विधान की दुहाई देते हुये कहा।

कामरेड धनुर्धर हतप्रभ हो गये। उन्होंने दूसरा 'आइटम' लिया। औतार नाम का भिखारी सख्त बीमार था, उसकी सेवा-सुश्रूषा का प्रश्न था। समिति ने निश्चय किया कि पारस की देख रेख में नारायण और बटोले, औतार की सेवा-सुश्रूषा करें। अन्य कई छोटे मोटे प्रश्नों पर विचार करने के उपरान्त कार्य्यकारिणी की बैठक सभापति को धन्यवाद देते हुये समाप्त हुई।

धनुर्धर जी का पहला दांव खाली गया। वे मन ही मन जल-भुन रहे थे। ऐसी मात उन्होंने कभी नहीं खाई थी। 'क्या भिखारी भी इतने सजग हो सकते हैं? क्या इनमें भी वर्ग-चेतना है? धनुर्धर जी सोच रहे थे कि क्या वह पागल किसी भी 'क्लास' का सदस्य नहीं हो सकता। फिर क्या किया जाय? अगर वह आज भिखारी यूनियन में शामिल कर लिया जाता तो सारे प्रश्न हल हो जाते।'

धनुर्धर जी पैदल ही चले जा रहे थे। उनके आगे आगे लगता था कि सत्य स्नेह जी की मोहिनी मूरत उनकी असफलता पर व्यंग करती चल रही है और उन्हें चुनौती दे रही है कि 'बालू से तेल निकालना तो सिर्फ हमारे ही जैसे लोगों का काम है, यह तुमसे नहीं होगा धनुर्धर, क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो।' धनुर्धर होंठ चबा कर रह गये।

———

प्रसिद्ध उपन्यास 'मन नाहीं दस बीस' के ख्यातिप्राप्त, लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार अनजान जी की ख्याति सारे देश में फैल चुकी है। उनकी पुस्तकों के अनुवाद कई प्रादेशिक भाषाओं में हो चुके हैं। उनके प्रयोगों का लोहा सभी मानते हैं। कविता में, कहानी में, उपन्यास में, नाटक में, चित्रकला में, अभिनय क्षेत्र में, यानी कि आर्ट की सभी ब्रान्चों में उनका प्रवेश है और धाक भी तथा कई साहित्यिक संगठनों के प्रधान होने का भी श्रेय उन्हें प्राप्त है। अपना निज का 'प्रकाशन मन्दिर' है ताकि रॉयल्टी का झगड़ा ही न रहे। यह और बात है कि सूर, तुलसी और कबीर जैसे लोग रॉयल्टी और प्रकाशन के चक्कर में न पड़े। अब कला कला के लिए नहीं है, अपितु कला क्या कुछ के लिए नहीं है, क्योंकि अब जमाना ही बहुत कुछ के लिए है।

उनके प्रसिद्ध उपन्यास का नायक एक रिक्शेवाला है। इतना सुन्दर चित्रण किया है उन्होंने इन निरीह प्राणियों के जीवन का कि पढ़िये तो आँसू छलकने लगते हैं। रिक्शेवाला तो रिक्शेवाला है, अनजान जी को इक्के के घोड़ों से भी सहानुभूति है। इसी उपन्यास के एक अध्याय में इक्के के घोड़ों के दैनिक जीवन का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन है। कितनी सहानुभूति है इस महान् कलाकार के विशाल हृदय में। उपन्यास पढ़ कर लगता है जैसे वे सिर से पाँव तक हृदय ही हृदय होंगे।

अनजान जी के पास अपनी मोटर नहीं। साइकिल पर कहीं आना जाना उन जैसे महान् कलाकार के लिए शोभनीय नहीं। बच रहा रिक्शा, सो रिक्शे में ही आते जाते हैं। जब उल्टी हवा चलती रही होगी, रिक्शेवाला हाँफ-हाँफ कर पैडिल मारता रहा होगा और रिक्शा कर्ण के रथ की भाँति खिसकता ही न रहा होगा—अनजान जी का बोझ लेकर-तब क्या बीती होगी इस महामानव के हृदय पर।

जब मेघ झड़ते होते तो अनजान जी बरसाती ओढ़े और छाता लगाये यह देखते कि रिक्शे वाला कैसे भींग रहा है। कैसे बारिश ने उसके माथे के पसीने

को धो डाला है, फिर भी पसीना है कि चलता जाता है। ऊपर से मेंह, शरीर से पसीना, खारे और मीठे का मेल। क्या पसीना भी भाप बन कर उड़ जाता होगा और बादल बन कर बरसता होगा?—अनजान जी ने एक दिन सोचा। उनका विचार था--इस उक्ति को अपने उपन्यास में भिड़ाने का, लेकिन डर रहे थे कि उनका विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान कम होने के कारण बात कहीं उल्टी न बैठे।

कड़कते जाड़े में जब अनजान जी स्वेटर, कोट और ओवरकोट पहने तथा कान पर गुलूबन्द बाँधे होते तो देखते कि उनका रिक्शेवाला निकर और फटी कमीज पहने उनको उनके गन्तव्य स्थान को खींचे लिए जा रहा है।

एक बार एक रिक्शे वाला, जो कि उनके आउट हाउस की एक कोठरी लेकर रहता था, बीमार पड़ा। कुछ ही दिनों में उसकी हालत खराब हो गई। उसे रुधिर का वमन होने लगा। अनजान जी ने सुना कि उसे तपेदिक हो गया है, उसके फेफड़े सड़ चुके हैं। उन्होने उसे फौरन अपने यहाँ से हटवाया, आखिर उनके भी तो बाल-बच्चे हैं।

अनजान जी को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का अनुभव था। बड़ी बड़ी तकलीफें उठा कर पढ़े हुये थे। उन्हें याद है कि जब वे शहर के हाईस्कूल में पढ़ते थे तब घर से आटा-दाल की गठरी बांध कर खुद लाया करते थे। सत्तू में मां राब (गुड़) डाल दिया करती थी। सत्तू का जलपान करते और कभी-कभी दोपहर को भी सत्तू ही खाते थे। जिस दिन शाम को आलस लग जाता उस दिन रात में भी खाना बनाने का झंझट छोड़ सत्तू ही घोल कर पी लेते। शहर में दो ट्यूशन मिल गये थे—एक दो रुपये का, दूसरा तीन का। इस प्रकार किसी तरह घसीट घसाट कर अनजान जी ने हाईस्कूल की परीक्षा पास किया था।

हाई स्कूल के बाद अनजान जी बम्बई भाग गये। थोड़ा बहुत लिखते थे—विशेष कर कविता। देखने में भी बुरे नहीं थे। सोचा था हीरो बनूँगा, किन्तु निराशा ही मिली वहाँ। अन्त में निराश होकर लौट आये। उनके कुछ साहि-

त्यिक प्रतिद्वन्द्वी कहते हैं कि वहाँ उन्होंने प्लेटें धोईं थीं—रेल का किराया कमाने के लिए। प्लेट भी तो आखिर इन्सान ही धोते हैं।

इसके बाद उन्होंने क्लर्की की और साथ ही थोड़ा सा दिल लगा कर भी देखा। नतीजा यह हुआ कि क्लर्की भी छूटी और दिल की दुनिया भी उजड़ गई। किन्तु अनजान जी को अपने आशियाने की राख में जैसे हीरा मिल गया। वे विरह-गीत लिखने लगे। उन्होंने खूब लिखा। वे खूब चमके भी। नवयुवकों के गले का हार बन गये। कवि सम्मेलनों में धाक जम जाती-उनकी कविताओं की। फिर क्या था उन्होंने हर क्षेत्र में प्रयोग आरम्भ कर दिये। अपने कुछ सम्पादक मित्रों द्वारा अपनी समालोचना और प्रशंसा छपवा कर वे महाकवि, महालेखक तथा महानाटककार बन गये।

आज कल अनजान जी एक नया उपन्यास लिख रहे हैं। गर्मी तेज़ पड़ रही है। दिन के दो बजे हैं। लंच के बाद अनजान जी आज आराम किये बिना सीधे उपन्यास पर आ बैठे। उनके प्रकाशन मन्दिर में काम नहीं था इस-लिए कुछ लिख लिखा कर देना आवश्यक था। अनजान जी का उपन्यास देहाती जीवन पर था। वे लिख रहे थे—"बैसाख की कड़कती धूप। हरदेव अकेले ही कुदाल लेकर ऊख का खेत गोड़ रहा था। क्या करे मजदूर रखने भर को पैसे नहीं थे उसके पास। उसका सारा शरीर पसीने-पसीने हो गया था। पसीना टपक टपक कर गिर रहा था-मिट्टी के ढेलों पर। जलते ढेले छन से सोख लेते थे—पसीने की बूँदे। लगता था जैसे अंगारों पर बूँद बूँद करके पानी टपक रहा हो।"

खस की टट्टी चीरता हुआ लू का एक झोंका आया। अनजान जी झुलस से गये। उन्होंने नौकर को आवाज़ दिया। वह आया, उसे डांटा कि टट्टी को तर करना वह क्यों भूल जाता है। टट्टी सींची गई। उपन्यास आगे बढ़ा।

यों तो सत्यस्नेह जी कामरेड धनुर्धर के शत्रु नहीं थे, किन्तु जब से धनुर्धर ने उनकी संस्था के कर्म्मचारियों की यूनियन बनवा दिया था तब से सत्यस्नेह भी कामरेड का पतन देखने को बड़े उत्सुक थे। किन्तु वे क्या जानते थे कि कामरेड ने क्या दाँव लगाया है—उनका भण्डाफोड़ करने के लिये। सत्यस्नेह जी यदि धनुर्धर का नाम भी अखबारों में पढ़ते तो उनका चिल्लू भर खून जल जाता। जब से उन्होंने सुना कि कामरेड ने भिखारी यूनियन बनाया है और उसका एक उद्देश्य यह भी है कि ऐसे संगठनों और व्यक्तियों से संघर्ष किया जाय जो कि ग़रीब भिखारियों के उद्धार के निमित्त चन्दा एकत्रित करते हैं तो उनका माथा ठनका। उन्होंने एक दिन अपने विश्वस्त नौकर टिल्लू को भेज कर भिखारी यूनियन के कोषाध्यक्ष, लल्लू लाल को बुलवाया।

लल्लू आया। उसकी और सत्यस्नेह जी की पुरानी जान पहचान थी। लल्लू को सत्यस्नेह जी ने अपने ड्राइंगरूम में बुला कर अपने पास सोफे पर बिठाया। टिल्लू को आज्ञा मिली कि वह ड्राइंग रूम का दरवाजा बन्द कर दे, क्योंकि सत्यस्नेह जी को डर था कि कहीं धनई माली को सुराग न मिल जाय; और धनई ठहरा धनुर्धर का आदमी।

"कहो लल्लू, अच्छे तो हो?"—सत्यस्नेह जी ने सस्नेह पूछा।

"किरपा चाहिये, मालिक।"—लल्लू ने दाँत निकाल कर उत्तर दिया।

"सुना है तुम लोगों की यूनियन बनी है।"—सत्यस्नेह जी ने विरक्त भाव से पूछा।

"जी मालिक, धनुर्धर बाबू ने बनवाया है।"

"तुम क्या हो उसमें?"

"मैं कहने को तो खजांनची हूँ, लेकिन रुपया-पैसा तो आता एक नहीं।"

"इससे फायदा क्या होगा तुम लोगों का?"

"मालिक, कुछ अभी तक तो देख पड़ा नहीं। कमेटी ने पास किया था कि रोगी औतार की सेवा और देख-भाल, पारस, बटोले और नरायन करें।

भला बताइये खाली सेवा से क्या हो सकता है। बिना दवा-दारू के सेवा कहाँ तक काम करेगी। सो हुआ यह कि औतार परसों मर गया। तीन चार रुपया इकट्ठा करके पारस को दिया गया था—दवा लाने के लिए, सो भिखारियों में अफवाह फैली है कि सारा पैसा पारस, नरायन और बटोले बाँट कर खा गये, दमड़ी की अफीम भी ला कर न दिया औतार को।"

"तुमने कभी और भी भिखारियों की यूनियन बनते सुना है, लल्लू लाल?" सत्यस्नेह जी ने रंग चढ़ाया।

"यह तो नहीं सुना मालिक, लेकिन इतना जरूर सुना है कि रूस में भिखारी भी राजा है। खाना-कपड़ा सबको बराबर मिलता है। हम लोग भी यही चाहते हैं कि हमारी अपनी मुश्किलें हल हो जायँ, हमको भी आराम से खाना मिले।"

"रूस में बैठे बैठे खाना नहीं मिलता, लल्लू। जो काम से जी चुराता है उसे सख्त सजा मिलती है।" सत्यस्नेह ने लल्लू को ललकारा।

"होगा।" लल्लू ने उपेक्षापूर्वक छोटा सा जवाब दिया।

"खैर, जाने दो लल्लू"—सत्यस्नेह जी ने पैंतरा बदलते हुआ कहा—"तुम्हारे यहाँ कितने मेम्बर हैं?"

"यही कोई पचास बीस (एक हजार) के करीब।"

"क्या सभी लोग तुम्हारे यहाँ मेम्बर बन सकते हैं?"

"जी नहीं, जो सोलह आने भिखारी हो। अभी धनुर्धर बाबू ने पछताव (प्रस्ताव) किया था कि एक पागल को जो बाजार में अक्सर घूमता रहता है--मिम्मर (मेम्बर) बना लिया जाय, लेकिन कुमेटी (कमेटी) ने मंजूर नहीं किया।"

लगा सत्यस्नेह जी की आँखों से पर्दा हट गया। अब धनुर्धर की चाल उनकी समझ में आई। "तो यह बात है।"—उन्होंने जैसे स्वप्न देखते हुये कहा।

"देखो लल्लू"—उन्होंने सम्हलते हुये कहा—"तुम अपने आदमी हो, मुझे अपने यहां की सारी खबर देते रहना--खास कर धनुर्धर जो कुछ कहें या

करें; और देखो तुम किसी बात की परवाह न करना, मैं तुम्हारे साथ हूँ; तुम्हारा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।"

"जैसा हुकुम मालिक, लेकिन......।" लेकिन को खींचते हुये लल्लू लाल ने खीसें निपोर दीं।

सत्यस्नेह जी समझ गये। बोले—"उसकी परवाह न करो।"

लल्लू चला गया। सत्यस्नेह जी सोच रहे थे-"यह धनुर्धर तो बड़ा ही धूर्त निकला। जाने कौन सी स्थिति ला कर खड़ी कर दे। कहाँ से उन्होंने उस पागल की तस्वीर छपवा दी—उस पैम्फलेट में। किसी आर्टिस्ट से एक मामूली सा चित्र बनवा कर क्यों न छपवाया। यह भिखारी यूनियन अवश्य ही किसी विपत्ति की द्योतक है। तूफान आने के पहले सन्नाटा हुआ करता है। धनुर्धर भी कैसी चुप्पी साधे है। क्या मेरे ऊपर किन्हीं विपत्तियों का तूफान आने वाला है?" सत्यस्नेह जी का सर चकराने लगा। बँगला, जीप, सोफे, रेफ्रिजेरेटर, रेडियो-सेट, बिजली के पंखे, काँटे-छुरी, किताबों की आलमारियाँ, चेक-बुकें और नोटों की गड्डियाँ—सब अस्त-व्यस्त से घूमने लगे उनकी स्मृति में। टेलीफोन की घंटी चीख-चीख कर उनके अंतस्थल में चुभने लगी। कल्पना में बजता घड़ी का अलार्म उन्हें अल्टीमेटम देने लगा। उन्होंने अपने को सम्हाला। खद्दर के रूमाल से माथे का पसीना पोंछा और फिर टेलीफोन का रिसीवर उठाया। मिस्टर त्रिवेदी, एडवोकेट से उन्होंने एप्वाइन्टमेन्ट लिया और फिर कुछ लिखने लगे।

वैसे तो भिखारी यूनियन की कार्य्यकारिणी के सभी सदस्य प्रभावशाली भिखारी थे, किन्तु उन सब में लल्लू लाल का अपना एक विशिष्ट स्थान था। यही कारण था कि सत्यस्नेह जी ने उसे बुलवाया था। सत्यस्नेह जी का उसने पहले भी कई काम बनाया था। यों लल्लू बहुतों के काम आया करता और दूसरों का काम बनाना उसका साइड बिजनेस था, भिखारी पेशा तो उसका एक एनगेजमेण्ट भर था। वह हट्टा-कट्टा और तन्दुरुस्त था। भिखारी बनने के कोई गुण उसमें नहीं थे, लेकिन गुण-दोष किसी का कौन देखता है—केवल अवसर, वातावरण और बुद्धि की आवश्यकता पड़ती है हर जगह।

लल्लू नाना प्रकार के बिजनेस करता था। शहर के कितने ही गँजेड़ियों को सस्ता देशी गाँजा पहुँचाया करता। कितने ही चोरों से उसका मेल-जोल था। जिस माल का कहीं सुराग न मिले उसका पता लल्लू लगा लेता था। प्रेमियों के पत्र और संदेश ले जाना और उन्हें मिलवाना—इस कार्य्य का श्रेय भी लल्लू को प्राप्त था।

वह स्वयम् गाँजा पीता और देशी शराब की बोतलें चढ़ा जाता था। जब काम किये बिना ही लल्लू का जीवन सुख से बीत रहा था तो मेहनत-मशक्कत करने की जरूरत भी क्या थी। क्यों उत्तरदायित्व लिया जाय? क्यों बँधा जाय? क्यों दूसरों पर आश्रित रहा जाय? मनुष्य के ऊपर जितने ही बन्धन रहते हैं वह उतना ही विवश रहता है। कानून और दण्ड व्यवस्था हैं तो हुआ करें। सामाजिक बन्धन और मान्यतायें हैं तो रहें। पारिवारिक बन्धन हैं तो हुआ करें। लल्लू को इन सब से क्या लेना देना। वह तो स्वतन्त्र है, स्वच्छन्द है। वह अपने को उन बाबुओं से ऊँचा और अच्छा मानता है जो कि सुबह से शाम तक पीसा करते हैं।

लल्लू सत्यस्नेह जी के यहाँ से निकला तो सीधे धनुर्धर जी के घर की ओर रवाना हुआ। लल्लू को अच्छा मसाला मिल गया था। इन विभूतियों के बीच उसे परिस्थितियों ने लाकर खड़ा कर दिया था। उसकी स्थिति चक्की के दो

पाटों के बीच की नहीं थी, अपितु वह फूल और काँटे के बीच खड़ा था। फूल तो फूल, काँटा भी उसे बहुत कुछ देने को तैय्यार था। लल्लू सोचता जा रहा था—"खूब मौका हाथ आया है। बड़े लोग आसानी से काबू में नहीं आते। अगर मैंने सम्हाल-सम्हाल काम किया तो निश्चय ही बड़ा लाभ होगा। फिर यूनियनें तो बनती-बिगड़ती रहती हैं। मुझे यूनियन से क्या लेना-देना। औतार मर गया, यूनियन ने क्या किया। फिर जब यूनियन सब को गद्दी पर बिठा देगी तो क्या मैं ही सबसे निकम्मा हूँ जो कुछ नहीं पाऊँगा; फिर अपना मतलब कौन छोड़ता है? आया मौका खोना मूर्खता है। क्या सत्यस्नेह जी और कामरेड धनुर्धर अपना स्वार्थ छोड़ सकते हैं, फिर मैं क्यों साधू बना बैठा रहूँ।"

लल्लू का दूरदर्शी मस्तिष्क साफ देख रहा था कि इन दोनों नेताओं को भिड़ाने में अपनी चाँदी ही चाँदी है। किन्तु दो मेधावियों को भिड़ाना कोई हँसी खेल नहीं है। लल्लू दिमाग पर जोर दे दे कर तरकीबें सोचता जा रहा था। उसके दिमाग में सहसा बिजली कौंधी। उसने अपनी राह अनजान जी के घर की ओर बदल दिया। अनजान जी के घर पहुँचा। कॉल-बेल का बटन दबाया। अनजान जी उस समय एक अति सुन्दर कविता लिख रहे थे –

मेरे शव से कहते हो जिओ!
उठो-बैठो और खाओ-पिओ।
जगत यों ही चलता आया है।

कि बेल की आवाज के झटके से कल्पना के तार टूट गये। लल्लू भीतर बुलाया गया। वह जा कर फर्श के कालीन पर बैठ गया।

"कहो लल्लू, कैसे चले?"—अनजान जी ने मेज की दराज खोल कर अपनी पेन रखते हुये कहा।

"मालिक, आप की कलम का क्या कहना! लगता है वाल्मीकी जी ने फिर से औतार लिया है।"

अनजान जी पर 'निज कवित्त केहि लागि न नीकी' वाला जादू असर करने लगा, किन्तु बाह्यरुप से बोले—"क्या इस काम के ही लिये आये हो अथवा कुछ और भी है?"

"मालिक, आप को नई नई चीजों और नये नये आदमियों पर लिखने का शौक है।"

अनजान जी के निचले ओठ के कोने पर मुस्कान खेल गई जैसे हल्की हवा ताल के पानी को गुदगुदा देती है।

"तो मालिक, हमारे बाज़ार में एक पागल आदमी है। लेकिन है अजीब पागल। किसी से बोलता नहीं। कुछ लेता-देता नहीं और न कुछ माँगता-जोंगता ही है। अगर आप उस पर कुछ लिखें तो काफी अच्छा रहेगा।"

अनजान जी की बाँछें खिल गईं। वे स्वप्न देखने लगे कि इस आदमी को लेकर एक ऐसा उपन्यास लिखेगें कि लोगों को विवश हो कर 'नोबेल प्राइज' देनी पड़ेगी। और पुरस्कार की रकम को वे इंगलैण्ड या अमेरिका में ही इनवेस्ट करेंगे, क्योंकि इस देश का क्या ठिकाना, अगर कहीं लाल हो गया तो फिर समझिये बेड़ा ग़र्क।

"मालिक, फिर क्या सोचा आप ने?" लल्लू ने प्रश्न किया।

"ठीक है लिखूँगा, और देखो लल्लू अगर हो सके तो उसे एक दिन यहाँ लाओ—कुछ बख्शीश मिल जायगी उसे।"

"उसे तो इनाम-इकराम की परवाह नहीं रहती मालिक, फिर भी कोशिश करूँगा। और हाँ धनुर्धर जी और सत्यस्नेह जी दोनों ही उस पर बड़ी किरपा दिखा रहे हैं। लगता है दोनों में कुछ उठने वाला है उसको लेकर।"

अब तो अनजान जी बड़े घबराये। वे धनुर्धर और सत्यस्नेह दोनों ही को जानते थे। उन्हें भय हुआ कि धनुर्धर स्वयम् न उस पर कोई पुस्तक लिख रहे हों—विदेश से प्रकाशित करवाने के लिए। सत्यस्नेह भी हो सकता उसे लेकर कोई समाज-सेवा सम्बन्धी पुस्तक लिख रहे हों। फिर भी कोई बात नहीं है। साहित्यकार की कलम में जो शक्ति, उसकी भाषा में जो ओज, प्रवाह और मोड़ होता है वह भला इन लोगों में कहाँ। मैं कड़ी मेहनत करके दस दिन में ही उपन्यास तैय्यार कर डालूँगा—उन्होंने मन को सान्त्वना दी।

"तुम्हें और पहले बताना चाहिये था, लल्लू लाल।" अनजान जी ने अर्द्धमोलित आँखों से लल्लू की ओर देखते हुये कहा।

लल्लू ने खीसें निपोर कर अपनी भूल स्वीकार की। अनजान जी ने ड्रॉअर में से बँधी हुई मुट्ठी निकाली और लल्लू के हाथ पर उसे खोल दिया। लल्लू 'सलाम मालिक' कहता हुआ उठा और चला गया।

अनजान जी ने फौरन एक आर्टिस्ट को बुलाया और उससे पुस्तक के कवर की डिज़ाइन बनाने को कहा। फिर वे सोचने लगे कि कहानी का प्रारम्भ कैसे हो।

"वह 'पागल' बचपन में बड़ा ही सहृदय था। उसे पशु-पक्षियों से बड़ा प्रेम था। उसका जी होता कि सदैव प्रकृति की गोद में रहे। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ हों, झरने हों, नदियाँ हों, और वह हो। गहरा नीला समुद्र हो, ऊँची-ऊँची लहरें हों और वह एक तख्ते पर बैठा हुआ उन लहरों पर भटकता फिरे। किन्तु बचपन में ही उसके माँ-बाप मर गये। बालक का सपना टूट गया। उसकी चाची उस पर काफी अत्याचार करने लगी और फलस्वरूप वह पागल हो गया। पर शायद 'Jude The Obscure' की तरह इस प्रकार के उपन्यास का स्वागत न हो।"

"तो फिर वह पागल एक बहुत ही सुशिक्षित नवयुवक था। कवितायें लिखा करता था। उसकी कवितायें शेली से कुछ कम न थीं या यों कहिये कि वह 'शेली और कीटस्-इन वन' था। वह अनारकिस्ट (अराजकवादी) विचारों का था। उसकी कला का पारखी न मिला और इसलिए वह पागल हो गया।"

किन्तु इस प्लाट पर भी उनकी तबीयत न जमी। वे एक नया प्लाट सोचने लगे। सोचा इस कहानी में एक ऐतिहासिक पुट क्यों न रक्खा जाय।

"कड़ा का अपना एक ऐतिहासिक महत्व है। जब शाह आलम ने कड़ा की जागीर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को दे दी तो कड़े के एक जागीरदार ने उस

का विरोध किया। क्लाइव के फौलादी पंजों ने शीघ्र ही उसे मसल डाला। इस पागल का सम्बन्ध उसी यशस्वी कुल से है।"

किन्तु ऐतिहासिक प्लाट लेकर तो बहुत सारी कहानियाँ लिखी गई हैं। अनजान जी ने यह 'आइडिया' (विचार) भी 'ड्राप' (छोड़) कर दिया। वे आँखें मूँदे कुछ सोचने लगे।

"आज रोटी न खाई जाई। जोहत जोहत रसोई जुड़ाय गई।"

अनजान जी की तन्द्रा टूटी। देखा मिसेज़ अनजान दरवाजे पर खड़ी हैं।

हमार नकबुज्जी (नाक की लौंग) बनवायो? काल्हि जब बाँचय (रेडियो पर 'टाक' देने) गय रह्यो तौ ई नाई भवा कि सोनारे के इहाँ होत आई।"

अनजान जी चुपचाप उठे और खाना खाने चले गये। वे सोचने लगे कि उनका जीवन कितना टूटा टूटा सा है। स्त्री मिली तो बज्र देहातिन। भला वे क्या करें इस 'मेहरारू' का। तभी सहसा अनजान जी के दिमाग में एक 'फ्लैश' (तेज प्रकाश) हुआ। उन्हें अपने उपन्यास का सूत्र मिल गया। क्यों न 'सेक्स प्राबलम' को लेकर इस उपन्यास का प्रारम्भ किया जाय। हिन्दी में यह एक नये प्रकार का प्रयोग होगा। 'सेक्स' सम्बन्धी मसाला इकट्ठा करने के लिये, उन्होंने सोचा कि आज डाक्टर दुग्गल से मिला जाय।

"खात्यो नाहीं गौं से।" (ठीक से खाते क्यों नहीं)--श्रीमती अनजान बोलीं। अनजान जी की कल्पना की पतंग की जैसे डोर कट गई। वे जल्दी जल्दी खाने लगे।

डाक्टर दुग्गल एक प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ता थे। उन्होंने 'सेक्स' पर नई रोशनी डाली थी। जैसे उनका कहना था कि मीराबाई सेक्स के ही के कारण ऐसी बनी। यही कारण है कि उनके भजन इतने हृदयस्पर्शी हैं और साथ ही साथ उनमें इतनी भाव-विह्वलता है। कबीर पर भी उनका यही सिद्धान्त लागू होता था। झांसी की रानी, लक्ष्मी बाई को भी वे 'सेक्स-स्मिटन' बताते थे।

डाक्टर दुग्गल का बड़ा नाम था। उनके सिद्धान्तों की बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। लोग उनकी कई एक पुस्तकों को बड़े आदर की दृष्टि से देखते थे। अर्थात् डाक्टर दुग्गल देश के गिने-चुने विद्वानों में से एक थे। ऐसे लोगों की देश को कितनी आवश्यकता है। देश का उद्धार और उन्नति ऐसे ही इन्टेलेक्चुअलस के हाथों में है। देश को 'क्वालिटी' चाहिये, 'क्वानटिटी' नहीं।

घोड़ा मुँह के रास्ते मोटा होता है और आदमी कान के रास्ते। जब से डाक्टर दुग्गल की प्रशंसा चारो ओर फैली और उनके प्रशंसक उनको घेरे रहने लगे तब से वे दिन दूना और रात चौगुना मोटे होते गये और अब हाल यह है कि सीढ़ियों पर चढ़ते हाँफते हैं, कार का दरवाजा खुद खोलने में कष्ट होता है और पेट गज भर आगे की ओर निकल गया है। यों डा० दुग्गल लम्बोदर तो हैं लेकिन भोजनभट्ट नहीं, क्योंकि वे मुँह के रास्ते नहीं कान के रास्ते मोटे हुये हैं।

मिसेज दुग्गल को अकबर की तलवार समझिये—दुबली-पतली, छरहरी सी, सलोनी सी। उन्हें देख कर बिहारी की 'कनक छड़ी' वाली उक्ति का स्मरण हो आता। मिसेज दुग्गल जब से डा० दुग्गल मोटे हुये तब से उनसे खिंचा-खिंची रहती हैं। ज्यों ज्यों डाक्टर दुग्गल का मोटापा बढ़ा त्यों त्यों श्रीमती दुग्गल का खिंचाव।

डाक्टर दुग्गल बेचारे इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें अपने और श्रीमती दुग्गल के सम्बन्धों की analysis (विवेचना) करने का समय नहीं मिला था, अन्यथा यह एक नये ढंग का experiment (प्रयोग) होता।

अनजान जी डाक्टर दुग्गल के यहाँ आये। उन्होंने समस्या रक्खी। डा० दुग्गल कुछ देर मौन रहे और फिर बोले--"यह तो एक नया 'टाइप' है। इस की स्टडी (अध्ययन करना होगा।"

"तो फिर इसमें देर नहीं होनी चाहिये।"--अनजान जी ने बेसब्री से कहा।

"देखिये, इसे तो आप तय मानिये कि उसके पागलपन की जड़ में सेक्स है, लेकिन उसकी पूरी psycho analysis (मनो विश्लेषण) किये बिना कुछ सही राय कायम करना ठीक नहीं होगा।"—डाक्टर दुग्गल ने दोनों हाथों की उँगलियों को बजाते हुये कहा।

"तो मैं उसे आप के यहाँ शीघ्र ही लाऊँगा।"--अनजान जी घबराये से बोले।

"ठीक है, आप आने से पहले मुझे 'रिंग' कर लीजियेगा।"

"अच्छा तो आज्ञा दीजिये।"--अनजान जी ने उठते हुये कहा।

"कष्ट के लिये धन्यवाद।"

"कोई बात नहीं।"

अनजान जी ने खीसें निपोर दीं।

मिस्टर खन्ना, बार-एट-ला से सलाह-मशविरा लेने के बाद सत्यस्नेह जी ने सोचा कि इस 'पागल' को पागलखाने भिजवा दिया जाय। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। उन्होंने लल्लू को बुलवा कर कहा कि वह बाजार के लोगों में प्रचार करे कि इस आदमी द्वारा आये दिन नुकसान हुआ करता है और अशान्ति फैलती है। फिर वे लोग पुलिस को लिखें, बाकी काम स्वयम् वे सम्हाल लेंगे।

लल्लू ने बाह्यरुप से सत्यस्नेह जी की बात मान लिया, किन्तु उसकी पैनी बुद्धि ने देखा कि सारा खेल खत्म हुआ चाहता है और अगर ऐसा हुआ तो उसकी प्रतिष्ठा और आमदनी दोनो ही नष्ट हो जाँयगी, अतः वह धनुर्धर जी के पास पहुँचा। उन से सारा कच्चा चिट्ठा बताया। धनुर्धर जी पैरों के तले से धरती खिसक गई।

"अगर ऐसा हुआ तो ठीक नहीं होगा लल्लू। फिर तुम लोग भी अपनी खैरियत मत समझो। किसी दिन शायद तुम भी आगरे पहुँच जाओ।"

"कहाँ की बात करते हैं बाबू जी आप। क्या सारी अकल सत्यस्नेह जी के ही हिस्से पड़ी है? पहला काम यह कीजिये कि उसे भिखारी यूनियन में भर्ती कर लीजिये, फिर देखते हैं कि किस की मजाल है जो उसे पागलखाने भिजवाता है।" लल्लू इस समय हीरो लग रहा था।

"लेकिन लोग राज़ी होंगे?"—धनुर्धर ने ससन्देह पूछा।

"उन्हें राज़ी करना मेरा काम, बाकी आप सम्हालियेगा।"—लल्लू ने आश्वासन दिया।

सायंकाल एक पार्क में भिखारी यूनियन की कार्य्यकारिणी की एकआवश्यक बैठक हुई। वह 'पागल' दो के विरुद्ध उन्तीस मतों से यूनियन का सदस्य बना लिया गया। बैठक में लल्लू नहीं आ पाया था, क्योंकि उसके पेट में दर्द हो गया था।

'पागल' भिखारी यूनियन के चक्रव्यूह में जयद्रथ बन कर बैठ गया; और फ़िर गुरु द्रोण के समान धनुर्धर जी तो थे ही, फिर क्या मजाल थी किसी अर्जुन

की, जो उसको छू भी पाये। धनुर्धर जी खूब जानते थे कि सत्यस्नेह की स्थिति अर्जुन जैसी नहीं है और न कोई कृष्ण ही उन की सहायता कर रहा है।

अब धनुर्धर ने तय कर लिया कि वे शीघ्र ही सत्यस्नेह को रगड़ देंगे। सब से पहले उन्होंने अखिल भारतीय जीवनदान समिति कर्म्मचारी-यूनियन की चाभी ऐंठी। धनई, मु० उल्फतराय आदि अपना सुर-राग अलापने लगे। सत्यस्नेह जी को एक गृहयुद्ध का सामना करना पड़ा। वे घबराये नहीं। एक धीर-वीर सेनापति की भाँति उन्होंने स्थिति का सामना किया। युद्ध बढ़ता ही गया, किन्तु सत्यस्नेह का पक्ष भारी पड़ा। धनई माली निकाल दिया गया। संस्था नहीं चाहती थी कि उसके कर्म्मचारी उग्रवादी विचारों के हों। संस्था तो राजनीति, धर्म, जाति-बिरादरी आदि से ऊपर थी, अतः संस्था के संचालकों को यह कदापि स्वीकार नहीं था कि उनके यहाँ वेतन आदि साधारण सुविधाओं को ले कर कोई मामला खड़ा किया जाय। अतः संस्था की कार्य्यकारिणी ने यह निश्चय किया कि धनई को जो कि सब का अग्रणी था एक महीने का अतिरिक्त वेतन दे कर निकाल दिया जाय।

धनई निकाल तो दिया गया किन्तु आग दबी नहीं, अपितु लगा कि आग बारूद की मैगजीन तक पहुँच चुकी है। धनुर्धर जी ने सुना तो धनई को सान्त्वना दी। धनुर्धर जी की पार्टी के सदस्य और पार्टी का स्थानीय पत्र 'ज्वालामुखी' जीवनदान समिति और सत्यस्नेह जी के विरुद्ध जोरदार प्रचार करने लगे। संस्था को एक ढकोसला बताया गया और सत्यस्नेह को ढोंगी। धनई घूम घूम कर सत्यस्नेह के विरुद्ध प्रचार करने लगा।

इन प्रचारों का परिणाम यह हुआ कि सत्यस्नेह जी की काफी बदनामी फैली। उनके विरुद्ध एक आन्दोलन सा खड़ा हो गया था। किन्तु सत्यस्नेह जी भी चुपचाप बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने नत्थूसिंह दारोगा को सारी स्थिति बताई। एक दिन पुलिस ने उस 'पागल' को पकड़ लिया। भिखारी यूनियन भड़क उठी और थाने के सामने प्रदर्शन प्रारम्भ हुआ। मामला रंग पकड़ गया। धनुर्धर जी ने विद्यार्थियों और मजदूरों से अपील की कि वे भिखारी यूनियन का साथ दें। बात और बढ़ी। जिले के अधिकारियों ने देखा कि

'पागल' के विरुद्ध कोई अभियोग नहीं है इसलिये उसे रिहा कर दिया गया। ज्यों त्यों कर के मामला शान्त हुआ। सत्यस्नेह जी की यह भी चाल विफल हुई। धनुर्धर जी के प्रयत्नों की जन साधारण ने सराहना की।

अन्ततोगत्वा विवश हो कर सत्यस्नेह ने लल्लू लाल को बुलवाया। लल्लू ने सत्यस्नेह जी को सलाह दी कि वे अभी चुप रहें भिखारी यूनियन में यों ही एक गुल खिलने वाला है--उस पागल को लेकर। भिखारीवर्ग यह महसूस कर रहा था कि जिस व्यक्ति के लिये उन्होंने इतना बड़ा संघर्ष किया वह बिल्कुल ही निकम्मा है। वह एक पशु है और मनुष्य बनने के तत्व उसमें हैं ही नहीं। वह 'यूनियन' के किसी काम नहीं आ सकता था, उल्टे, आये दिन उस के कारण विपत्तियाँ खड़ीं हो सकती थीं। बाजार के लोगों में भिखारियों के प्रति दया और सहानुभूति न रह गई थी, अपितु वे भिखारियों को मात्र परोपजीवी समझने लगे थे। सत्यस्नेह जी के इशारे पर बाजार में यह प्रचार हो गया था कि भिखारियों को भीख न दी जाय, क्योंकि ये लोग किसी भी समय किसी भी 'वर्ग' के लिये तूफान खड़ा कर सकते हैं। अगर इन का 'गढ़' अभी न तोड़ा गया तो वे ज़ोर पकड़ते जायेंगे। पुलिस और अधिकारी-वर्ग भी भिखारियों की गति विधि पर कड़ी नजर रखने लगा। नतीजा यह हुआ कि भिखारी वर्ग चक्रव्यूह में घिर गया। भिखारी यूनियन भीतर ही भीतर टूटने लगी। धनुर्धर जी ने देखा कि फिलहाल चुप बैठ रहना ही अच्छा है इसलिये वे कुछ न बोले। प्रायः हर भिखारी अपने को भिखारी यूनियन से बाहर बताने लगा। लगा भिखारी यूनियन टुकड़े टुकड़े हो गई। सिर्फ लल्लू ने अभी कोई स्टेटमेण्ट न दिया था यद्यपि आजकल वह भी चुपचाप ही था।

किन्तु न धनुर्धर चुप बैठने वाले थे और न सत्यस्नेह ही। इन दोनों विभूतियों ने पराजय नाम का शब्द सीखा ही न था। उनके लिये तो हर पराजय जय बन जाती थी। अपनी अस्थाई पराजय में ही वे जय के अंकुर खोजते। अतः धनुर्धर जी और सत्यस्नेह दोनों ही सक्रिय थे।

साहित्यकार अनजान जी ने उपन्यास लिखना प्रारम्भ कर दिया था। डा० दुग्गल से उन्हें काफी मसाला मिल गया था। अतः उन का उपन्यास सेक्स प्रधान था।

कलाकार जब कोई ऐसी रचना करता है जो कहीं कहीं उसके जीवन को भी छूती हो तो रचना में बड़ा ही निखार और फिसलन आती है। अतः उपन्यास भी फिसलता चल रहा था। लगता था सेक्स की बरफीली आग में अनज़ान जी स्वयम् 'स्केटिङ्ग' कर रहे थे। कहीं चढ़ाव, कहीं उतार, कहीं मोड़, कहीं घुमाव—सब पार करते जा रहे थे वे—एक अदा के साथ। कहानी सरसराती हुई आगे बढ़ रही थी।

किन्तु इस उपन्यास-रचना के दौरान में अनजान जी को लगा जैसे वे अपनी ही गाथा लिखने बैठे हों। उनके भीतर ही भीतर जैसे फुरफुरी होने लगी। वे यह महसूस करने लगे कि उनका सारा जीवन खोखला है। वे जैसे पुआल भरे 'धोख' हैं जिस में जीवन नहीं, वास्तविकता नहीं। समय की राख के नीचे दबी चिनगारियाँ फिर भड़क उठीं। वे बड़े ही अस्त व्यस्त से हो गये। शाम को जब वे अपने लॉन में बैठते तो उन के मन में आता कि हरी घास पर खूब लोटें। चाँदनी रात में अगर बाहर बैठते तो लगता जैसे उन को लू लग रही है। अँधेरी रात में अगर सोते तो नींद न आती; उन्हें यह भान होता कि काली रात की सारी कालिमा जैसे सिमट सिमट कर उनके भीतर पैठती जा रही है। "कहाँ है इतनी जगह मेरे भीतर जो इतना अंधेरा छिपाये फिरूँ? और फिर कब तक? क्या जीवन अँधेरे में टटोलने के लिये ही है?" अनजान का तर्क समाप्ति पर था और अब वे इमोशनल होते जा रहे थे।

फिर भी उन्होंने अपने को बहुत सम्हाला, बहुत दबाया। कभी कभी वे सोचते—"मैं इन्टेलेक्चुअल हूँ, समाज मुझसे कुछ अपेक्षा करता है, मुझसे कुछ माँगता है। कवि और कथाकार समाज की चेतना होते हैं। उन्हें बहुत सम्हल कर रहना चाहिये। मुझे कभी यह सोचना भी नहीं चाहिये कि मैं अकेला हूँ, खोखला हूँ, टूटा हूँ और टूटता जा रहा हूँ। और माना कि मैं टूटा हूँ, खोखला

हूँ, अकेला-अकेला सा हूँ, किन्तु क्या सहस्रों-लाखों लोग ऐसे नहीं जो जाने कब से टूटते आ रहे हैं, लेकिन फिर भी अपने को सम्हाले हैं। फिर मैं क्यों अपने टूटने पर तरस खाऊँ। संसार में सिवा पीड़ा के और है भी क्या। वायु पीड़ा से लदी हुई है; हमारे चारो ओर पीड़ा नाच रही है। मेरी साँसों में, आलिंगन में, मेरे आस-पास पीड़ा का एक समा सा बँधा है। जीवन वही है जिसमें पीड़ा भरी हो। पीड़ारहित जीवन तो पशु तुल्य है। अगर मेरे भीतर कुछ जागा है तो मैं उस 'कुछ' को सम्हाल कर रक्खूँगा, उसे सोने नहीं दूँगा और न उसे अचेत ही होने दूँगा।"

अनजान जी के भीतर बड़े ही उखाड़-पछाड़ होने लगे थे। कभी उनका मष्तिष्क प्रबल हो उठता तो कभी मन, अर्थात उनके रीज़न (बुद्धि) और इमोशन (भावावेश) में होड़ लगी थी। उन्होंने अपने को बहुत सम्हाला। एक दिन जब यह अतद्वन्द चल रहा था तो उन्होंने देखा कि सामने से एक बिच्छू जा रहा है। उन्होंने बिच्छू को पकड़ लिया। उसने डंक मार दिया। असह्य पीड़ा हो उठी। अनजान जी सारी रात छटपटाते रहे, किन्तु उनके भीतर का 'कुछ' ज्यों का त्यों बना रहा। उन्हें महसूस हुआ कि उनके भीतर का उभार बिच्छू के डंक से भी प्रबल है। उन्हें इस बात का भी भान हुआ कि एक पीड़ा दूसरे को नहीं दबा सकती।

बुरा हो लल्लू का जिसने उस 'पागल' पर लिखने के लिये उन्हें प्रेरणा दी। कहाँ से वे डा० दुग्गल से मिले। क्या संयोग था। अनजान जी के ठहरे ठहरे शान्त तालाब जैसे जीवन से यह कैसी नहर फूट पड़ी थी जो सारा पानी खींचे लिये जा रही थी—किसी मरुथल की ओर।

फिर भी उपन्यास बढ़ता ही जा रहा था। उसकी गति में लेश मात्र भी अवरोध नहीं उपस्थित हुआ, किन्तु साथ ही अनजान जी के भीतर की उथल-पुथल भी बढ़ती जा रही थी। लिखते-लिखते वे एक दम अनायास ही रुक जाते-ऐसे जैसे किसी ने 'डेकन क्वीन' के खतरे की जंजीर खींच दी हो। फिर खोजते कि आखिर वह कौन सी चीज है जिसने वह रोक लगा दी और फिर पाते कि उनके भीतर वह 'कुछ' फिर जाग उठा है।

'क्या जीवन इस लिये है कि आदमी लुटा-लुटा सा रहे ? जीवन कुछ माँगता है। वह माँगता है शान्ति और भरोसा, किन्तु शान्ति उनमें कहाँ और उन्हें तो न अपने आप पर भरोसा है, न किसी अन्य पर। इतना बड़ा रेगिस्तानी रास्तों सा जीवन प्यासे ही रह कर तो नहीं काटा जा सकता।"

फिर उनका ज्ञान सजग हो उठता। वे मन को सान्त्वना देते कि क्या हुआ अगर उनमें शान्ति नहीं है। क्या हुआ यदि उनका अपने आप से भरोसा उठ गया है। क्या हुआ यदि उनका जीवन एक लम्बा-लम्बा रेगिस्तानी रास्ता बन गया है। इस रास्ते पर प्यासे ही चलने में सच्ची शान्ति है और उन्हें अपने आप पर भरोसा करना ही होगा।"

"लेकिन क्यों ?" उनके भीतर अन्तर्द्वन्द जोर पकड़ जाता।

वे थक जाते। फिर लगता जैसे कुछ माँग रहे हों--"प्यासा जलता मरुथल हो, उनका पैर काँटों से बिंध गया हो, किन्तु वे चलते ही जाँय। हर कदम पर जी में आये कि बैठ जाँय। हर कदम पर लगे—अब गिरा, अब गिरा। हर कदम मंजिल की भीख माँगे। और फिर बालू के एक चप्पे पर जीवन की सिन्दूरी मदिरा लुढ़क जाय। उस स्थान पर केवल एक दाग़ रह जाय--भद्दा सा, घिनौना सा।" वे थक गये। उपन्यास को जहाँ का तहाँ छोड़ कर निकल गये घर के बाहर। ठंढी हवा से उनको कुछ सुकून मिला; लेकिन उनका दिल डूबता जा रहा था, डूबता ही जा रहा था--जाने किन गहराइयों में।

अनजान जी बाग में घूम रहे थे। पास ही 'हेज' (झाड़ी) के बगल में कुछ आवाज हुई, आकाश से एक चील झपट कर आई और एक रक्तरंजित चूहे को ले उड़ी। आकाश की ओर से खून का एक छींटा आकर अनजान जी के पास ही खिले सफेद गुलाब की एक पंखुड़ी पर गिरा। अनजान जी ने यह देख लिया। उनके भीतर जैसे सैकड़ों सितार एक साथ झनझना उठे। उन्होंने हाथ की जलती सिगरेट फूल की क्यारी में फेंक दी। क्यारी सींची जा रही थी, सिगरेट छन से बुझ गई। लगा अनजान जी ने मन ही मन कुछ निश्चय कर लिया। वे गम्भीर हो गये और कमरे में जाकर लिखने बैठ गये।

जीवनदान समिति की कोषाध्यक्ष होने के कारण शीला जी से सत्यस्नेह जी को बहुत दबना पड़ता था। यों कामरेड धनुर्धर मिसेज़ शीला प्रियव्रत के सम्बन्धी थे; अतः शीला जी का इस पद पर रहना सत्यस्नेह जी को खटकने लगा। इसलिये उन्होंने शीला जी का पत्ता काटने का प्रयत्न आरम्भ कर दिया। वैसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शीला जी ने उनकी कोई हानि नहीं की थी, किन्तु किसी का क्या ठीक जब धनुर्धर इतना कुछ कर सकते हैं तो क्या शीलाजी नहीं कर सकतीं ? संस्था के अवैतनिक पदाधिकारियों का चुनाव होने वाला था, अतः सत्यस्नेह जी को मौका अपने आप हाथ लग गया। चुनाव हुआ। शीला जी के स्थान पर मिस्टर तलवार, सिटी मैजिस्ट्रेट को कोषाध्यक्ष बनाया गया। इस समय सत्यस्नेह जी को सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की अपेक्षा सरकारी अफसरों की सहायता की अधिक आवश्यकता थी। शीला जी के घर से संस्था का टेलीफोन उखड़ गया। नौकर वापस बुला लिये गये। यह सब प्रोफेसर दम्पति को थोड़ा अखरा।

प्रो० प्रियव्रत समाजवादी विचारों के थे ही, लेकिन इन दिनों सत्यस्नेह और धनुर्धर के मामले में वे कोई दिलचस्पी नहीं दिखा रहे थे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि शीला जी अब जीवनदान समिति की कुछ न रहीं तो उन्होंने पैंतरा बदला। अब उनकी प्रत्यक्ष सहानुभूति धनुर्धर की ओर हो गई। उन्होंने भिखारी यूनियन के नाम अपनी शुभ कामनायें भेजीं और यूनियन के कार्य्यों की सराहना की।

प्रियव्रत जी विश्वविद्यालय में 'समाज-सेवा' के भी प्रधान थे। अतः उन्होंने अपने कुछ विद्यार्थियों द्वारा प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार कार्य्यक्रम के अन्तर्गत भिखारियों के लिये शाम को एक पार्क में प्रौढ़-शिक्षा स्कूल खुलवा दिया।

विद्यार्थियों के सम्पर्क में आकर भिखारी सजग और जागरुक होने लगे। उन्हें यह प्रतीत होने लगा कि उनके भी कुछ अधिकार हैं जिसे समाज, बाज़ार वाले, सरकार या कोई दल नहीं छीन सकता। किन्तु अपने अधिकारों का उन्होंने बड़ा ही ग़लत अर्थ लगाया। अधिकतर भिखारियों को यह भ्रम

था कि भीख माँगना और पाना उनका अधिकार है और इस अधिकार को कोई नहीं दबा सकता।

बाज़ार वालों का भिखारियों पर का क्षणिक रोष समाप्त हो चला था। भिखारी फिर संगठित होने लगे। अब की बार उनके संगठन को प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार के अंतर्गत कार्य्य करने वाले विद्यार्थियों से बहुत बढ़ावा मिला।

धनुर्धर जी फिर योजना बनाने लगे। उनकी स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई थी, क्योंकि प्रोफेसर प्रियव्रत का सपत्नीक वरद हस्त उनके ऊपर था। अब की बार उनका विचार ऐसा प्रहार करने का था कि फिर दूसरे की ज़रूरत ही न पड़े।

इसी बीच लल्लू भिखारी पकड़ लिया गया। उसके पास से लगभग सेर भर देशी गाँजा बरामद हुआ था। किन्तु भिखारी यूनियन की कार्य्यकारिणी ने यह प्रस्ताव पास किया कि यूनियन को तोड़ने की यह चाल है। इसी कारण लल्लू पर यह अभियोग लगाया गया है। लल्लू के मामले को लेकर काफी शोर-शराबा मचा। मामला सिटी मजिस्टेट की अदालत में पेश हुआ। अदालत के बाहर नारे लगे और प्रदर्शन हुआ। वास्तव में धनुर्धर जी मिस्टर तलवार को यह बता देना चाहते थे कि जीवनदान समिति का कोषाध्यक्ष बन कर उन्होंने ठीक नहीं किया है। अब भी समय है, वे वहाँ से सम्बन्ध विच्छेद कर लें।

लल्लू को एक साल सख्त कैद की सजा मिली। भिखारियों के शोर मचाने का कुछ न हुआ।

पाँचू जन्मान्ध है। उसने दुनिया नहीं देखी, केवल उसके बारे में सुना है। वह नहीं जानता कि फूल–जिनकी सुन्दरता पर कितने ही काव्य खड़े हो गये हैं–कैसे होते हैं। वह नहीं जानता कि मुस्कान में आखिर क्या मिठास और आकर्षण होता है। चाँदनी रातें सुहावनी क्यों होती हैं। चन्द्रमा कितना सुन्दर होगा। सूर्य्य के प्रकाश की रंगत क्या है। कोढ़ से लोग घृणा क्यों करते हैं। भद्दापन कैसा होता होगा। सुन्दरता की परख क्या है। उसने सुना था कि आँखों से देख कर सुन्दर और असुन्दर का निर्णय किया जा सकता है और पाँचू के आँखें थी नहीं। उसका संसार अँधेरा और घुटन का संसार है। उस की आँखों के सामने दिन की रोशनी में एक लाल चमकता सा पर्दा छा जाता इसलिये काले और लाल, सिर्फ दो रंगों का ही ज्ञान था उसे। "इसी तरह पाँच रंग और मिला कर इन्द्रधनुष बनता होगा।"—वह कभी कभी सोचता।

पाँचू अपनी माँ के साथ पास ही के गांव में रहता था। उसकी माँ दूसरों के घर कूट-पीस कर कुछ कमा लेती, और जब मेहनत मज़दूरी से छुट्टी मिलती तो खेतों और बागों में जाकर गोबर बीनती और गोबर के उपले बना कर उन्हें शहर में जाकर बेच आती। एक दिन पाँचू की माँ गई रात को जब गोबर उठाती फिर रही थी कि बाग में उसने एक कुण्डली मार कर बैठे हुये साँप को गोबर समझ कर उठा लिया। साँप ने उसे डस लिया। पाँचू की माँ के बंधन कट गये। पाँचू के आगे पीछे कोई नहीं रह गया। उसने पहले तो गाँव में कुछ मेहनत मजदूरी करने की कोशिश की, किन्तु अन्धा होने के कारण उसे सफलता न मिली। विवश होकर वह शहर चला आया—भीख माँगने।

भिखारी यूनियन के सदस्यों को पाँचू का आना अखरा। कारण यह था कि पाँचू अन्धा था, इसलिये भीख देने वाली जनता की सहानुभूति उससे अधिक होती और साथ ही यहाँ इतनी गुन्जाइश तो थी नहीं कि भिखारियों की संख्या बढ़ती ही जाय। जितने लोग थे उन्हें ही खाने कमाने की आफत थी। इसलिये भिखारी पाँचू को तग करने लगे। कोई उसकी भीख उसकी झोली से निकाल

लेता, कोई उसके पैर में डंडा फँसा कर उसे गिरा देता और कोई उसे गाली दे कर कहता कि यह तो बना अन्धा है। पेशे से भिखारी न होने के कारण पाँचू को यह सब सुनकर बड़ी तकलीफ होती। वह सोचता "आखिर क्या होता है इन भिखारियों का, अगर मुझे भी थोड़ी सी भीख मिल जाती है। आखिर मैं क्या करूँ, मेरा तो कोई सहारा नहीं। मेरे आँखें नहीं इसलिये काम नहीं कर सकता, नहीं तो आज काहे को भीख माँगनी पड़ती।" पाँचू यह सोच-सोच कर अकेले में बिलबिला उठता, लेकिन कोई नहीं सुनता था उसकी सिसकियाँ। किसके पास समय है जो ऐसी व्यर्थ की बातों पर सोचे भी।

भिखारी यूनियन के गुरिल्ला दल ने पाँचू पर जोरों से छापे मारना प्रारम्भ कर दिया था। वे दृढ़निश्चय थे कि पाँचू को भगा कर ही दम लेंगे। पाँचू दिन भर भीख माँगने के बाद भी अक्सर भूखा रह जाया करता। एक दिन जब पाँचू की झोली में एक भिखारी हाथ डाल कर कुछ निकाल रहा था कि एक मजबूत हाथ ने उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया। मज़बूत हाथ कसता ही गया, वह भिखारी तिलमिला कर चिल्ला उठा। मज़बूत हाथ ढीला पड़ा। भिखारी भाग गया।

मज़बूत हाथ उस 'पागल' का था। जिसे सत्यस्नेह और धनुर्धर अपना नहीं बना पाये वही अनायास ही पाँचू की लाठी बन गया। जिसे भिखारीगण निकम्मा कहा करते वही एक असहाय अन्धे के काम आया। जिसे आज तक कोई नहीं खरीद पाया था वही बेदाम बिक गया। जिसका दूसरे शोषण करते आ रहे थे उसने एक गरीब अंधे को शोषित होने से बचाया।

पाँचू को पागल के कारण बड़ा ही सहारा मिला। वह उसे देख नहीं सकता था। न ही किसी ने उसके रंग-रूप, चाल-ढाल के बारे में उसे कुछ बताया था। पाँचू कल्पना करता कि वह बड़ा ही सुन्दर होगा। उसके अंग-अंग से सुन्दरता छलकती होगी। उसकी आँखों में सुर्ख़ डोरे होंगे। उसकी आँखें पाँचू की आँखों की भाँति दबी-दबी, गतिहीन नहीं होगी। उनमें चंचलत्ता होगी, उनमें गति और चापल्य होगा। पाँचू ने सुना था कि जो लोग सुन्दर होते हैं

वे बड़े ही अच्छे होते हैं और यही कारण था कि वह 'पागल' के बारे में ऐसा सोचता। बेचारा पाँचू, वह क्या जाने कि हृदय को सुन्दरता और शरीर की सुन्दरता में बड़ा अन्तर होता है। मनुष्य शरीर देखकर सुन्दर नहीं कहा जा सकता। जिसका हृदय सुन्दर है वही वास्तव में सुन्दर है। बाह्य सुन्दरता घटती है, उसमें घुन लग जाता है, किन्तु आन्तरिक सुन्दरता बढ़ती ही जाती है। किसी पुराने कलामय चित्र की भाँति उसका मूल्य बढ़ता ही जाता है। इसीलिए सूक्ष्मदर्शी पाँचू ने पागल के दिव्य मन को देखकर यह धारणा बना ली थी कि उस का शरीर भी दिव्य होगा।

कवि अनजान की पुस्तक प्रायः समाप्ति पर थी। उन्हें पुस्तक पर पूरा सन्तोष था। यदि उन्हें सन्तोष नहीं था तो अपने आप पर। उनके मन की दशा टूटे हुये थर्मामीटर के पारे की सी थी जिसे जितना ही पकड़ने की कोशिश की जाय वह उतना ही भागे। अनजान जी के भीतर का संयम टूट चुका था—थर्मामीटर की भाँति और अब पारे की भाँति उनका मन अनियन्त्रित और स्वच्छन्द हो गया था।

अनजान जी को अपनापन अधूरा अधूरा सा लगता। इस अधूरेपन के लिये उन्हें एक पूरक चाहिये था। वे अपने भीतर टटोलने लगते कि आखिर वह कौन सी चीज है जो उन्हें दबाये चली जा रही है। तभी जैसे कोई उनके भीतर से बोल उठा—

"तुम में प्रेम जागा है, कलाकार!"

अनजान जी झनझना से उठे। उनके दोनों कान गरम गरम से लगने लगे और उनका चेहरा तमतमा आया।

अनजान जी आजकल बिल्कुल ही नहीं से बोलते। उन्होंने बाहर आना जाना तक बन्द कर दिया था। उनके प्रकाशन मन्दिर का काम ढीला पड़ रहा था। पत्नी से उनका खिंचाव बढ़ता जा रहा था। वे सोचते कि आखिर यह सब क्या हो रहा है। फिर स्वयम् ही कह उठते—"जल जाने दो। सब कुछ जल जाने दो। जब मैं ही जल रहा हूँ तो और सबको लेकर क्या करूँगा।" उन्हें विराग होता जा रहा था। वे घण्टों बैठ कर कविता लिखा करते। रात में सोते सोते जाग उठते और कविता लिखने बैठ जाते। लगता था जैसे उनके भीतर कहीं काव्य का स्रोत फूट पड़ा है। यह और बात थी कि उनकी कविताओं में दम नहीं था, किन्तु थीं वे पैनी। अनजान जी अब स्वान्तःसुखाय लिख रहे थे। उन्होंने निश्चय कर लिया था कि वे अपने हृदय के टुकड़ों को बेचेंगे हरगिज़ नहीं।

अनजान जी अपने ही प्रति कठोर हो गये थे। इसी कारण वे हर चीज़ से प्रतिहिंसा लेना चाहते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक वस्तु—मेज़-कुर्सी, बाग-बगीचा, दरोदीवार सभी पीड़ा से नाचने लगें। चीखते जाँय और नाचते जाँय। नाचते जाँय और चीखते जाँय। और वे खड़े खड़े यह सब देखें और हँसे। हँसे और देखें। हर वस्तु सहारा माँगे और वह न मिले। एक साँस के लिये हर कोई घुट जाय, किन्तु वह वापस न आये और अगर वापस भी आये तो उसमें छुरियाँ, भाले और बरछियाँ छिपी हों। एक साँस का मूल्य हो, चुभन, घुटन. वेदना, यातना और ऐंठन। वे चाहते थे कि उनके बाग़ में खिले हर फूल को कोढ़ हो जाय। उन पर भौंरें नहीं, मक्खियाँ भिनभिनायें; उनमें पराग के स्थान पर सड़ी हुई मवाद भरी हो; सौरभ के नाम पर वे असह्य बदबू फैलायें। उनके भीतर गंधक सुलगे और सारा वातावरण उससे मतला उठे।

अनजान जी के भीतर जैसे लोहबान सुलग रही थी। उसका तेज धुआं उनके भीतर वीभत्सता का आवाहन करता था—ऐसी वीभत्सता का जो खोजती है सुन्दरता। जो माँगती है गरम गरम साँस, नरम नरम बाहें, सुलगती सी धड़कनें और ऐंठता सा यौवन। और यह वीभत्सता अपने लक्ष्य-प्राप्ति के अभाव में विकराल रूप धारण करती जा रही थी। वह चाहती थी कि अपनी लपेट में उन सब को समेट ले जो उसके सामने हों और उन्हें अजगर की कुण्डली सी लपेट कर, चरमरा कर तोड़ डाले—बस तोड़ डाले।

इस नये दर्द में कवि अनजान का सारा पुरानापन खो गया। वे अब अपने को सिर से पैर तक दर्द ही दर्द मानने लगे। उनका जैसे कायाकल्प हो गया था। सत्यस्नेह की अनजान से पुरानी जान पहचान थी। सत्यस्नेह अनजान को इस्तेमाल करना चाहते थे—अपने और धनुर्धर के मामले में, किन्तु अनजान हाथ नहीं आये थे। सत्यस्नेह को जब अनजान की बदली परिस्थिति का पता लगा तो वे अनजान से मिले। अनजान जी को देखकर ही वे भाँप गये कि मामला कुछ गहरा है, किन्तु अनजान से बात उगलवा ही लिया उन्होंने। फिर सत्यस्नेह बोले—"आप विवाह क्यों नहीं कर लेते?"

"क्या कहते हैं आप !"--अनजान भौंचक्के से बोले।

"कुछ बुरा नहीं रहेगा।"

"मेरे स्त्री है।"

"तो क्या हुआ। आप बायरन और शेली को ही देखिये।"

"उनका क्या, वे बहुत बड़े आर्टिस्ट थे।"

"आप भी कुछ कम बड़े नहीं। आपको, सच पूछिये अनजान जी तो आप को एक ऐसा साथी चाहिए जिसने चॉसर और स्पेन्सर से लेकर इलियट और यीटस् तक को पढ़ डाला हो। इबसेन, चेख़ोव, तुर्गनेव और हेमिंग्वे पर जो अथॉरिटी हो। और फिर देखिये न, कला के सृजन के लिए वातावरण भी तो चाहिये। आप क्या ऐसे सूने सूने में कुछ लिख पायेंगे, और इस तरह आप अपनी ही नहीं अपितु समाज की भी हानि करेंगे।"

बात अनजान को अच्छी लग रही थी। वे तो चाहते ही थे कि उनके पीड़ास्थल को कोई गुलाब की पंखुड़ियों से सहलाये।

"और फिर देखिये अनजान जी, आप समर्थ हैं, 'सेक्स-अर्ज' व्यक्ति का पुरुषार्थ है। फिर आप सकपकाते क्यों हैं ?"--सत्यस्नेह ने रंग जमाया।

बात अनजान के भीतर काफ़ी धँस रही थी। फिर भी उन्होंने कहा—"लोग क्या कहेंगे। यह दूसरा विवाह...?"

"लोग कहेंगे कि अनजान जी ने अच्छा ही किया। आखिर एक मिट्टी की मूरत के साथ कब तक बँधे रहते वे। अनजान जी ने ब्याह किया, अपने लिए नहीं—कला, अमर कला की साधना और सृजन के लिए।"--सत्यस्नेह ने मुस्कराते हुए दलील दी।

"मैं क्या कहूँ सत्यस्नेह जी, मैं ठहरा कल्पना लोक में विचरण करने वाला कलाकार, मुझे संसार की वास्तविकता का अधिक ज्ञान नहीं। आप हैं समाज-सेवी, समाज-कल्याण की जितनी पेचीदगियाँ आपको मालूम हैं, शायद कोई नहीं जान सकता। यदि आप दूसरे विवाह की अनुमति और मन्त्रणा देते हैं तो

मैं अवश्य प्रयास करूँगा।"--अनजान जी ने भोली-भाली आवाज़ में उत्तर दिया।

"आप निश्चिन्त रहें अनजान जी, मैंने सब सोच समझ कर ही आप से निवेदन किया है।" --सत्यस्नेह जी अनजान को आश्वासन देते हुये बोले।

....

भिखारी यूनियन में फिर यह प्रश्न उठा कि वह पागल यूनियन की सदस्यता से हटा दिया जाय, क्योंकि उसने यूनियन के एक सदस्य पर प्रहार किया है। कार्य्यकारिणी की बैठक में यह प्रश्न बटोले ने उठाया, किन्तु धनुर्धर जी ने सदस्यों से यह अनुरोध किया कि उसे एक मौका और दिया जाय। किसी तरह कार्य्यकारिणी राजी हुई। धनुर्धर जी ने स्पष्ट देखा कि उस पागल और भिखारियों का साथ निभना कठिन है, और यदि भिखारी यूनियन का सहयोग न मिला तो उनकी कोई योजना पूरी न हो पायेगी, अतः उन्होंने शीघ्र ही कुछ ठोस काम करने की ठानी।

धनुर्धर इधर कई दिनों तक अपनी मात्र भगिनी, प्रेमा के विदेश से लौट आने के कारण बहुत ही व्यस्त रहे। इधर सत्यस्नेह भी गर्मी अधिक बढ़ जाने के कारण मसूरी चले गये। इसलिए आजकल मामला कुछ शान्त था, किन्तु जब धनुर्धर जी ने देखा कि भिखारी यूनियन की नाव पर उस पागल का भवसागर पार करना कठिन है तो उन्होंने शीघ्र ही कुछ करने का निश्चय किया।

धनुर्धर जी की मात्र भगिनी, कुमारी प्रेमा या प्रेमलता या समझिये प्रेमा जी योरोप से शिक्षा पाकर लौटी थीं। यों तो ऑक्सफोर्ड से उन्होंने एम० ए० किया था पर साथ ही चित्रकला का उन्हें बहुत शौक था, इसलिए वे काफ़ी दिनों तक इटली, फ्रान्स तथा पश्चिमी जर्मनी में चित्रकला सीखती रहीं और अब लगभग तीन साल की कला-साधना के उपरान्त सीधे पश्चिमी जर्मनी से भारत वापस आई थीं।

प्रेमा जी सही मानों में कलाकार थीं। कला में यों तो उनकी बचपन से ही रुचि थी, किन्तु जर्मनी, फ्रान्स और इटली में भ्रमण के उपरान्त अब वे साकार कला बन गई थीं। बात यह है कि उनके ऊपर घर गृहस्थी का झंझट नहीं; क्या घटा, क्या बढ़ा उन्हें इसकी परवाह नहीं; क्या खाना बना है और कितने लोगों के लिए बना है, इसका हिसाब रखना बाबरची का काम है। अतः

इन गुणों से विभूषिता कन्या को करने के लिए कला की साधना के सिवा और रह भी क्या जाता है। अतः प्रेमा जी सही मानों में कलाकार थीं।

जहाँ तक चित्रकला का प्रश्न है उनकी तूलिका का क्या कहना। लगता लियोनार्दो द विंशी और रेफ़ल एक साथ आकर प्रेमा जी में केन्द्रीभूत हो गये हों। योरोप के कई आधुनिक चित्रकारों ने उनकी कला की बड़ी प्रसंशा की थी। उनकी तूलिका में कुछ ऐसा कमाल था कि बस पूछिये नहीं। उनकी पेन्टिंग्स रायल सोसायटी और बाम्बे स्कूल ऑफ आर्टस द्वारा पुरस्कृत हो चुकी थीं, अतः प्रेमा जी भारत के गिने चुने आर्टिस्टों में थीं। यह प्रेमा जी ही थीं जिन्होंने पश्चिम में रह कर भी भारतीय कला की साधना जारी ही नहीं रक्खी अपितु कितने ही सफल चित्रकारों पर भारतीय चित्रकला की छाप भी छोड़ आई थीं।

प्रेमा जी के विदेश से घर आने के उपलक्ष में कामरेड ने एक 'ऐट होम' का आयोजन किया। पार्टी में नगर के गण्यमान्य नागरिक तथा नेता आये। कवि अनजान भी आये। कवि का प्रेमा से परिचय हुआ। कवि को प्रेमा की बातचीत, चाल-ढाल, हाव-भाव अर्थात् सब कुछ कलाकार-सुलभ सा लगा। उन्होंने मन ही में सोचा— ऐसे ही लोगों में कला है। इनका एक एक क्षण कला मय है। ये लोग कला के मूर्त्तरूप हैं। कहीं कवि की काव्य साधना और प्रेमा की कलासाधना का संयोग हो पाता।

कवि ने बिदा लेते हुये प्रेमा को दूसरे दिन शाम को अपने घर चाय पर बुलाया।

दूसरे दिन जब प्रेमा जी चाय पर कवि अनजान के घर गईं तो उन्होंने पूछा कि आजकल वे क्या लिख रहे हैं। अनजान ने अपने नये उपन्यास की चर्चा की। प्रेमा जी ने बताया कि उन्हें आजकल नई पोर्ट्रेट्स के लिए 'इन्सपिरेशन' नहीं मिल रहा है। "यहाँ इस शहर का वातावरण बड़ा घुटा घुटा सा है, ऐसे में मूड ही नहीं बनता।"—प्रेमा जी ने निराश भाव से कहा।

"जी हाँ, कहाँ योरोप, कहाँ हिन्दुस्तान। कहाँ वियना, पेरिस, रोम और जेनोवा, कहाँ यह हमारा छोटा सा नगर। क्या बतायें, हम तो आदी हो गए

हैं यहाँ के; और फिर करें भी तो क्या। सच पूछिये प्रेमा जी तो यह वातावरण का ही प्रभाव है कि हमारे आर्ट में वह गहराई, वह फिसलन और ओज नहीं आ पाता जो कि योरोपियन आर्ट में है।"

"इसमें क्या शक! लिप्पी, गुइसियार्डिनी, विंशी, रेफ़ल, माइकेलऐञ्जलो आदि को उठाने में वातावरण ने बड़ा ही काम किया। यह वातावरण का ही प्रभाव था कि रेनेसाँ (पुनर्जागरण) योरोप में प्रारम्भ हुआ, ओरियन्टल कन्ट्रीज (पूर्वीय देशों) में नहीं।"

"निःसंदेह।"—अनजान ने ठकुरसुहाती की।

कहने को अनजान और प्रेमा दोनों ही रो रहे थे यहाँ की परिस्थितियों तथा वातावरण पर, किन्तु यदि उनसे पूछा जाता कि मुग़ल काल के एक दो प्रसिद्ध चित्रकारों का नाम बताइये तो शायद उनकी आँखें चौड़ी होकर रह जातीं।

इसके उपरान्त अनजान जी ने अपने अपूर्ण, नये उपन्यास से दो अध्याय प्रेमा जी को सुनाया। प्रेमा जी 'पागल' के चरित्र-चित्रण से बहुत प्रभावित हुईं। अनजान ने उन्हें बताया कि वह इसी नगर में रहता है। प्रेमा जी ने भी उसकी एक पोर्ट्रेट बनाने का निश्चय किया। उन्होंने चलते चलते अपनी एक जर्मन सहेली से यह वादा किया था कि वे भारतीय जन जीवन का एक स्वरूप पेण्ट करके उसे भेजेंगी। अतः उन्होंने सोचा खाली बैठने से अच्छा है यही कर लिया जाय।

स्थानीय दैनिक पत्र 'वीरभद्र' के सम्पादक का नाम है—वभ्रुवाहन जी। वभ्रुवाहन जी एक मँजे हुए पत्रकार, आलोचक तथा साहित्यकार हैं। यद्यपि उनका प्राचीन इतिहास का ज्ञान बड़ा ही सीमित है पर लिखते हैं वे प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति पर ही। पाषाण युग से ले कर हर्ष के समय तक की इतिहास की सामग्रियों को एकत्रित करके उन्होंने कई एक उपन्यास और एकांकी लिखे हैं। जैसे उनकी एक नई खोज यह थी कि हर्षवर्धन संतप्त प्रेमी था और इस कारण ही वह प्रयाग में आकर सर्वस्व लुटा दिया करता था। चाणक्य एक अवसरवादी था और उसका रूस से गुप्त सन्बन्ध था। चन्द्रगुप्त एक पपेट किंग (कठपुतली राजा) था। इसी प्रकार वभ्रुवाहन जी की नाना प्रकार की उक्तियाँ थीं—प्राचीन इतिहास पर।

वभ्रुवाहन जी की अनुकम्पा द्वारा तथा उनके पत्र की पब्लिसिटी द्वारा कितने ही नये कलाकारों को साहित्य के प्रांगण में पदार्पण करने का अवसर प्राप्त हुआ था, हालाँकि प्रारम्भ में अनजान जी की कविताओं को उन्होंने अपने में पत्र स्थान नहीं दिया था, और यही कारण था कि अनजान और वभ्रुवाहन में कुछ चलती थी। किन्तु सत्यस्नेह से वभ्रुवाहन का पुराना साथ था। वे एक दूसरे के काम आते रहते। उदाहरणार्थ सत्यस्नेह जी का बखान 'वीरभद्र' में आये दिन छपता रहता और सत्यस्नेह वभ्रुवाहन जी का प्रचार करवाते तथा उन्हें देश के गिने-चुने सम्पादकों में से एक बतलाते। सत्यस्नेह जी का बड़े लोगों की सर्किल में विशेष तौर से आना जाना था, अतः वभ्रुवाहन की प्रतिष्ठा उनके प्रयास से बढ़ गई थी। वभ्रुवाहन की स्थिति बड़ी ही स्पृहणीय थी। वे एक मुख्य समाचार पत्र के सम्पादक थे, जिस पर चाहते कीचड़ उछालते, जिसे चाहते आकाश में पहुँचा देते। नये लेखकों और कवियों की भीड़ उनके यहाँ कुछ इस प्रकार लगी रहती मानो उनका कार्य्यालय काम दिलाऊ दफ्तर हो। नगर के सभी प्रतिष्ठित व्यक्ति उनका इसलिए सम्मान करते कि

आये दिन उन्हें अपनी प्रशंसा, घर का शादी-ब्याह, कौन आया-कौन गया और यदा कदा अपनी तस्वीर 'वीरभद्र' में छपवानी रहती।

सत्यस्नेह ने जब देखा कि भिखारी यूनियन अब फिर जाग रही है और धनुर्धर जी फिर कोई बखेड़ा खड़ा करने वाले हैं तो वे वभ्रु जी की शरण में गये। उन्होंने वभ्रु जी से धनुर्धर की सारी शरारतों का ज़िक्र किया। उन्होंने यह भी बताया कि भिखारी यूनियन तो डूब चुकी थी, किन्तु प्रो० प्रियव्रत और उनके कुछ उग्र विद्यार्थियों ने दबी आग को फिर से भड़का दिया है। वभ्रु जी ने सत्यस्नेह जी को आश्वासन दिया कि वे चिन्ता न करें, वे कल ही एक सम्पादकीय इस पर निकालेंगे।

'वीरभद्र' में सम्पादकीय निकला। भिखारी यूनियन को कम्युनिस्ट हौवा बताया गया। साथ ही यूनियन पर यह आक्षेप लगाया गया कि उसे विदेश से सहायता मिलती है। छात्रों के अभिभावकों से अपील की गई कि वे उन पर नियन्त्रण रक्खें। छात्रों को ज्ञानार्जन करना चाहिये, न कि वे इधर उधर तूफ़ान खड़ा करते फिरें। सरकारी अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते हुये लिखा गया कि यदि वे इस ओर ध्यान नहीं देंगे तो नगर की शान्ति और व्यवस्था को खतरा है। देश की स्वतन्त्रता का अभी शैशव काल है, इसलिए सरकार और जनता से आग्रह किया गया कि वे ऐसे संगठनों को पनपने न दें।

इस सम्पादकीय लेख का सबसे विकराल प्रभाव पड़ा विद्यार्थी समाज पर। अपने प्रति ऐसा लाञ्छन विद्यार्थीवर्ग कदापि सहन न कर सकता था। विद्यार्थी नेताओं ने नगर के सभी विद्यार्थियों के नाम अपील निकाली। दूसरे दिन विश्वविद्यालय, कालेजों और स्कूलों में हड़ताल हो गई। विद्यार्थियों का जुलूस नगर में फेरी देता हुआ 'वीरभद्र' के कार्य्यालय पहुँचा। नारे कुछ यों लगाने लगे--

"वभ्रुवाहन चोर है।"

"वभ्रुवाहन हाय-हाय।"

"'वीरभद्र' बेइमानों का।"

'वीरभद्र' कार्य्यालय की खिड़कियों के शीशे तोड़े जाने लगे। पुलिस बुलाई गई, विद्यार्थी वर्ग जमा रहा।

नगर के अधिकारी आये। विद्यार्थियों से अपील की गई। ज्यों त्यों कर के मुसीबत टली, वभ्रुवाहन जी ने सन्तोष की साँस ली।

इधर धनुर्धर जी के दल का पत्र 'ज्वालामुखी' आग उगलने लगा। धनुर्धर जी ने नगर में वभ्रुवाहन और सत्यस्नेह के विरुद्ध खुल कर प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया। 'वीरभद्र' का विद्यार्थियों ने बहिष्कार कर दिया। पत्र का सरकुलेशन कुछ गिर गया। भिखारी यूनियन के सदस्य जहाँ जाते वहीं सत्यस्नेह और वभ्रुवाहन जी की बुराई करते।

सत्यस्नेह जी ने देखा कि धनुर्धर फिर बाज़ी मार ले गये और उनकी गोट बेकार गई, अतः उन्होंने कुछ दिनों के लिए चुप रहना ही श्रेयस्कर समझा।

सत्यस्नेह चुप बैठने वाले नहीं थे। अबकी बार उन्होंने अपनी संस्था के कोषाध्यक्ष, तलवार साहब, सिटी मैजिस्ट्रेट से सारी गाथा सुनाई। उन्होंने उनसे यह कहा कि यदि बाजार का व्यापारी वर्ग भिखारियों तथा धनुर्धर का वहिष्कार कर दे तो यह तूफ़ान दब सकता है। मि० तलवार ने भी देखा कि यह झगड़ा दबाना ही श्रेयस्कर होगा, अन्यथा यह किसी भी दिन रंग पकड़ सकता है, अतः उन्होंने दारोगा नत्थूसिंह को फ़ोन पर यह आज्ञा दी कि वाणिज्य मण्डल के सेक्रेटरी, लाला छुन्नूमल से वे स्वयम् मिलें और उन्हें थोड़ा गरम करें, फिर उनको सिटी मैजिस्ट्रेट के बँगले पर पेश किया जाय।

दूसरे दिन दारोगा नत्थूसिंह लाला छुन्नूमल की दुकान पर पहुँचे। दारोगा जी की चढ़ी हुई भृकुटी देख कर छुन्नूमल की आत्मा काँप उठी।

उन्होंने दरोगा जी को देखते ही गद्दी छोड़ दी और हाथ जोड़ कर बोले— "आइये दारोगा जी, बड़े दिन बाद दर्शन भयो सरकार को।"

नत्थूसिंह चुप रहे। उन्होंने अपनी जलती दृष्टि छुन्नूमल की शीतल आँखों में डाल दी। छुन्नूमल दहक उठे। उन्हें लगा जैसे शेर के सामने खड़े हों। छुन्नूमल ने हड़बड़ा कर आवाज दी— "अरे ओ किशोरी, बब्बन की दूकान से दौड़ के एक लमलेट (लेमनेड) तो ले आ।" किशोरी जाने लगा, छुन्नूमल फिर बोले—"और देख चार पान और बारह आने वाली सिगरेट की डिबिया भी लेते अइय्यो।" —"सरकार आप पान में जर्दा खाते हैं या नहीं ?" छुन्नूमल ने दारोगा जी से पूछा—दारोगा जी ने फिर आग्नेय नेत्रों से छुन्नू को देखा। छुन्नू के मुँह से सहसा निकल गया—"देख किशोरी, जर्दा और डली अलग से लइय्यो।" किशोरी चला गया। दारोगा जी बायें हाथ में हण्टर लिये हुए उसे अपनी दाहिनी हथेली पर धीरे धीरे उछालते हुए दूकान का मुआइना करने लगे। सहसा नत्थूसिंह घूमे और उन्होंने कड़ी आवाज में छुन्नूमल से पूछा—

"तुमने यह सब कब से करना शुरू कर दिया।"

"क्या धर्मावतार ?—छुन्नू काँपते हुये बोले।

"बनो मत छन्नूमल, पुलिस सोती नहीं है।"

"मैं तो आपके राज में रह कर अपनी रोटी-दाल कमाता हूँ, सरकार।"

"रोटी-दाल कमाते हो या दुनिया का सारा माल हड़प जाने के फेर में हो ?"

"मैं समझा नहीं, सरकार।"

"राशनिङ्ग के दिनों में भी तुम्हें समझाना पड़ता था, छन्नूमल।"

छन्नूमल डर के मारे काँप रहे थे। उनके ललाट और तोंद पर पसीने की बूँदें उभर आईं थीं। उनके पैर धरती से उठ उठ पड़ते थे। उनकी दशा गरम हवा भरे बैलून सी हो गई थी।

"सरकार, अगर मेरी खता बता दी जाय तो हजूर को कुछ सफाई दे सकूँ।" —छन्नूमल ने साँस इकट्ठी कर के कहा।

"देखो छन्नूमल"—नत्थूसिंह ने छन्नू को पुचकारते हुये कहना शुरू किया—"सी० आई० डी० ने रिपोर्ट दी है कि तुम देशी शराब और देशी गाँजा चोरी से बेचते हो और साथ ही तुम्हारे यहाँ रात में जुआ भी होता है।"

छन्नूमल को जैसे साँप सूँघ गया। दारोगा जी फिर बोले—"देखो छन्नूमल, मुझे कप्तान साहब ने बुला कर यह सब कहा है और तुम्हारी दूकान और घर की तलाशी लेने का हुक्म दिया है।"

छन्नूमल को लगा जैसे साक्षात् यमराज के सामने खड़े हों। किसी तरह बोले—"सरकार, यह सब झूठ है, बनाया हुआ है।"

"झूठ है ? बनाया हुआ है ? मैंने बनाया है ? कप्तान साहब झूठ बोलेंगे ?" —नत्थूसिंह गरज उठे।

"धर्म्मावतार, आप को कौन झूठा कह सकता है, और फिर कप्तान साहब, वे तो पूरे धर्म्मराज हैं। जब से आप और कप्तान साहब आये हम लोग तो लगता है जैसे रामराज में रह रहे हैं।"—छन्नूमल बिलबिला कर बोले।

"देखो छन्नूमल, यह मामला बहुत ही ऊँचे पहुँच चुका है, अगर तुमने इसे सम्हाला नहीं तो तबाह हो जाओगे।"—दारोगा ने छन्नूमल को नेक सलाह दी।

"सरकार, अब क्या बताऊँ। मेरे तो नसीब ही खोटे हैं। अभी मुझे पाँच हजार का घाटा उठना पड़ा है, और फिर यह झमेला।"

"घाटा तो होता ही रहता है, और फिर मुनाफा भी तो होता है, सेठ छन्नूमल।" दारोगा जी की आँखे चमकने लगी थीं।—"देखो छन्नूमल, शाम को सात बजे तुम थाने पर आ जाना। मैं तो चाहता हूँ कि तुम अपने पुराने आदमी हो इसलिये मामला दब जाय।"

"मुझे उबारो, मालिक।"—छन्नूमल हाथ जोड़े हुये बोले।

"अरे भई, अगर कप्तान साहब बीच में न होते तो मैं अभी तय कर देता, फिर भी तुम घबराओ मत, मैं पूरी कोशिश करूँगा।"

दारोगा जी चलने को हुये। छन्नूमल बोले—"मालिक, लमलेट तो पीते जाइये।"

"तुम तो जानते हो छन्नूमल कि मैं अपने उसूल का पक्का हूँ, कहीं खाता पीता नहीं। तुम्हीं बताओ, मैंने कहीं कुछ लिया दिया या खाया पिया।"

"अरे राम राम, आप भला ऐसा सोच भी नहीं सकते।"—छन्नूमल भीतर ही भीतर कसमसा कर बोले।

दारोगा जी दूकान से बाहर निकल गये फिर छन्नूमल की ओर आकृष्ट हो कर बोले—"ऐसे वक्त में किसी भी चीज का मुँह नहीं देखा जाता, छन्नूमल।"

छन्नूमल चुप रहे। दारोगा के चले जाने पर एक लम्बी साँस खींच कर धम्म से गद्दी पर गिर पड़े।

श्री यस० पी० आर० तलवार का पूरा नाम सीतापति राम जी तलवार था। हाल ही में सिटी मैजिस्ट्रेट होकर आये थे। रहन-सहन, बातचीत और चाल-ढाल से पूरे अँग्रेज मालूम पड़ते थे। सिर्फ अँग्रेज यदि नहीं थे तो समय की पाबन्दी में। बच्चे उन्हें 'पापा' कहते और उनकी पत्नी को उन्हें 'रैमज़े' कह कर पुकारना प्रिय था, अतः श्रीमती तलवार तथा मि० तलवार के सभी मित्र उन्हें इसी नाम से पुकारते थे। मिसेज तलवार का कहना था कि 'रैमज़े' राम जी का ही परिष्कृत रूप है। राम जी में वह मिठास और लय नहीं जो रैमज़े में है। श्रीमती तलवार के लिये राम जी यदि गुड़ था तो रैमज़े चॉकलेट।

दूसरे दिन छन्नूमल को लेकर दारोगा नत्थूसिंह तलवार साहब के बँगले पर हाज़िर हुये। छन्नूमल पेश हुये। यद्यपि तलवार साहब छन्नूमल को जानते थे तथापि उन्होंने अफसराना अन्दाज़ से पूछा—

"तुम्हारा नाम ?"

"छन्नूमल, सरकार।"

"आजकल तुम्हारे बाजार में बड़ी शरारतें हो रही हैं।"

"कौन सी सरकार ?"

"तुम नहीं जानते ?"

छन्नूमल चुप रहे।

"सुना गया है कि तुम्हारे बाजार में भिखारियों की एक यूनियन बनी है। उसकी वजह से आये दिन बखेड़ा खड़ा होता रहता है, और तुम लोगों का भिखारियों को भड़काने में हाथ है।"

"सरकार, हम ब्योपारी लोग इस झगड़े में नहीं पड़ते।"

"तो मैं ग़लत कह रहा हूँ ?"

"भला आप और गलत कहेंगे, हजूर। हो सकता है कुछ लोग छिप छिप भिखारियों की मदद कर रहे हों।"

"तुम लोग व्यापारी ठहरे, मैं नहीं चाहता कि अगर कोई बखेड़ा खड़ा हो तो उसमें उलझो। इसलिए तुम लोगों को चाहिये कि उस यूनियन का बायकाट करो और साथ ही भिखारियों को भीख न दो, उनकी किसी भी तरह मदद न करो।"

छन्नूमल के होठ काँपे किन्तु वे कुछ कह नहीं पाये। तलवार साहब फिर बोले—"इसी में तुम्हारा और तुम्हारे मण्डल का भला है। अगर इस पर अमल नहीं करोगे तो तुम्हीं लोगों का नुकसान होगा।"

अब छन्नूमल बोले—"आप ठीक कह रहे हैं, इसमें तो हमारा ही भला है। आप लोगों का हुक्म हम कैसे नहीं मानेंगे। मैं तो खुद हजूर से इस बारे में मिलने वाला था। इस यूनियन और इसके नेता धनुर्धर के कारण रोज़ कोई न कोई तूफ़ान खड़ा हुआ करता है।"

"और देखो छन्नूमल, भिखारी अगर नहीं दबाये गये तो जाने क्या उत्पात खड़ा कर दें। और अगर उनकी यूनियन कामयाब होती गई तो हो सकता है तुम लोगों की दूकानों में काम करने वालों की भी यूनियन बन जाय।"

अब छन्नूमल की आँखे खुलीं। उन्होंने यह कभी सोचा ही न था कि व्यापारियों की दूकानों में काम करने वालों की भी यूनियन बन सकती है। अगर ऐसा हुआ तो बड़ा ही नुकसान होगा। अपने आदमियों से वे बारह-चौदह घण्टे काम लिया करते थे और अगर एक आदमी छः या सात घण्टे ही काम करेगा तो उन्हें जितने आदमी इस समय हैं उतने और रखने पड़ेंगे। और यह विपत्ति यहीं खत्म नहीं होगी। कर्मचारियों का वेतन बढ़ाना होगा, उन्हें छुट्टी देनी होगी; और उनमें से किसी को वे निकाल नहीं पायेंगे, क्योंकि यूनियन हमेशा सिर पर सवार रहेगी।

"इसे सोचो छन्नूमल।"—तलवार साहब ने कहा।

"मैं समझ गया, सरकार। मैं सब समझ गया।"—छन्नूमल ने जैसे स्वप्न देखते हुये कहा।

"तो फिर जाओ और जो कुछ मैंने कहा है उस पर अमल करो ।"

"ऐसी ही होगा, सरकार ।"

तलवार साहब के बँगले के बाहर आकर छन्नूमल ने पसीना पोंछा और हाँफते हुये अपनी दूकान की ओर चल पड़े ।

कामरेड धनुर्धर छन्नूमल की दूकान पर आये। छन्नूमल ने उनकी आव-भगत की और उन्हें अपनी गद्दी पर बैठाया। गद्दी के पास ही गोशाला के चंदे का डिब्बा लटका था। उसे देखकर धनुर्धर ने कहा—"इस डिब्बे में से कभी कुछ निकलता भी है, छन्नूमल ?"

"निकलता क्यों नहीं बाबू जी। अभी मैंने १११) गोशाला को दिया और अपने पास से १०१) जीवनदान समिति को दिया।"—छन्नूमल ने सगर्व कहा।

"जानते हो छन्नूमल, जो पैसा तुमने जीवनदान समिति को दिया है उस का क्या होगा ?"

"धर्म्मकाज।"—छन्नूमल ने छोटा सा जवाब दिया।

"उस पैसे से धर्म्मकाज नहीं होता, बल्कि उस पैसे से बड़े लोगों की पर-वरिश होती है, उनके बँगले का खर्चा चलता है, उनकी मोटरें चलती हैं।"

"हमने तो पैसा धर्म्मखाते में दे दिया, अब समिति वाले जाने। मुझे पुण्य करना था सो कर दिया। अगर वह पैसा गरीबों की सेवा में नहीं पहुँचता है तो मैं क्या करूँ, उसका पाप वैसे ही खा जायगा उन लोगों को जो धर्म के नाम का पैसा खायेंगे।"—छन्नूमल ने विश्वासपूर्वक कहा।

"पाप, पुण्य, धरम ! यह सब ढकोसला है, छन्नूमल।"

"अरे राम राम, यह आप क्या कह रहे हैं ! बाबूजी, भगवान को तो डरो।"—छन्नूमल ने दोनों हाथ उठाते हुये कहा।

"भगवान को डरो तुम, छन्नूमल। मुफ्त का माल उड़ाते हो, काला बाज़ार करते हो, अनाज में कंकड़-पत्थर मिलाते हो।"—धनुर्धर जी ने सरोष नेत्रों से छन्नूमल को देखते हुये कहा।

छन्नूमल धनुर्धर जी को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए आगे कुछ कहने की उनकी हिम्मत न पड़ी। उन्होंने सोचा कि यदि यह आदमी नास्तिक है तो इसे भगवान स्वयम् समझ लेंगे, मैं क्यों पड़ूँ इस झमेले में।

धनुर्धर जी सोच रहे थे कि कहाँ से वे पाप-पुण्य और भगवान के झमेले में पड़ गये। उन्हें तो जिस काम के लिये वे आये थे उसकी चर्चा करनी थी। इसलिए कुछ शान्त होकर अपने होठों पर बनावटी मुस्कान लाकर धनुर्धर बोले—"छन्नूमल, मैं तुम्हारे पास आया था एक काम से।"

"हुकुम कीजिये।"—छन्नूमल खीस निकाल कर बोले।

"आजकल भिखारियों के विरुद्ध तुम्हारे मण्डल ने इतना कठोर दृष्टिकोण क्यों अपनाया है? सारे बाज़ार में बेचारे भिखारियों का बायकाट हो रहा है. उनके साथ इतनी सख्ती का बर्ताव क्यों कर रहे हो?"

"भिखारी बड़े ही खोटे हैं, रोज उत्पात करते रहते हैं, उनका तो बायकाट होना ही चाहिये। इन्हीं लोगों के कारण हम लोगों की दूकानों के ताले टूटते रहते हैं। ये सब चोर, उचक्के और निठल्ले हैं।"

धनुर्धर जी को छन्नूमल का यह अरुन्तुद वक्तव्य अच्छा नहीं लगा। वे बोले—"और तुम लोग क्या हो छन्नूमल—चोर या निठल्ले? भिखारी काला बाज़ार करते हैं या तुम लोग? भिखारी अनाज में कंकड़-धूल मिलाते हैं या तुम? यह जो कुछ भी तुम ने सोचा है वह ठीक नहीं है, छन्नूमल।"

"बाबू जी, हम कंकड़-पत्थर मिलाते हैं तो यह हमारा ब्यौपार है, और आप लोग खरीदते ही क्यों हैं हमारा माल?"—छन्नूमल भी कड़े पड़ गये थे।

"मैं केवल तुम से यही कहने आया हूँ छन्नू, यदि तुम लोगों ने अपना रवैय्या न बदला तो इसका नतीजा ठीक नहीं होगा।"—धनुर्धर जी उठ खड़े हुये।

"हम अपना कारबार करते हैं और आप लोग हैं कि किसी भले आदमी को कमाने खाने नहीं देते।"

धनुर्धर दूकान के बाहर जा चुके थे।

"क्या जमाना आ गया है।"—छन्नूमल ने लम्बी साँस छोड़ते हुये कहा।

प्रेमा जी ने पागल को पोर्ट्रेट पेन्ट करना प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने एक बार बाज़ार में जाकर उसे देखा था। उसे देखते ही उनके भीतर कहीं प्रागैतिहासिक युग के मनुष्य का चित्र घूम गया। प्रेमा को लगा जैसे वे उस युग के किसी बीहड़ बन में खड़ी हैं, उनके चारो ओर तरह तरह के जीव जन्तु चिल्ला रहे हैं और इधर उधर भाग दौड़ कर रहे हैं। उनके पास केवल एक मनुष्य है और बाकी सब कंकड़-पत्थर और जीवजन्तु हैं। प्रेमा के भीतर का कलाकार जाग उठा था और वे कल्पना की गहराइयों में तिरोहित हो गई थीं।

धनुर्धर जी ने देखा कि वह उस पागल की तस्वीर बना रही हैं तो उन्होंने मना किया। भला इन पागल, भूखों, नंगों को घर में लाने की क्या जरूरत है। ये बाहर की चीज़ हैं। इनको आगे रखकर लड़ाइयाँ तो लड़ी जा सकती हैं, लेकिन ये कहीं प्रवेश पाकर हीरो बनने के योग्य नहीं हैं। किन्तु प्रेमा ने भाई की बात टाल दी। उन्होंने धनुर्धर तथा अपनी भाभी को यह कह कर समझा लिया कि भारतीय जन-जीवन का एक रूप पेण्ट करके उन्हें जर्मनी भेजना है, क्योंकि वे अपनी एक सहेली को वचन दे आई हैं।

कवि अनजान प्रेमा जी को खूब बढ़ावा दे रहे थे। समय समय पर पोर्ट्रेट की प्रगति वे देखते और प्रेमा की प्रशंसा करते। प्रेमा भी कवि की प्रशंसा और गुणग्राहकता पर मुग्ध हो गई थीं, अतः अनजान तथा प्रेमा काफ़ी क़रीब आते जा रहे थे। अनजान का दर्द प्रेमा जी के पास होने पर गधे की सींग की तरह उड़ जाता। प्रेमा को भी अनजान के पास बैठ कर कुछ अच्छा सा लगता।

इधर धनुर्धर जी को यह पसन्द नहीं था। वे अनजान को एक बुर्जुआ आर्टिस्ट मानते थे, अतः अनजान के प्रति उन्हें किंचित मात्र भी सहानुभूति नहीं थी। साथ ही कवि की साख भी कुछ नहीं थी। वे न तो विदेश गये थे, न कोई ऊँची डिग्री ही उनके पास थी। उनके पास न तो ऊँचे इनवेस्टमेन्ट ही थे

और न कोई नियमित आमदनी। दूसरे कवि विवाहित जीव थे, अतः धनुर्धर जी को प्रेमा और कवि का साथ, उन का मिला-जुलना, अखरा। उन्होंने इशारे से प्रेमा से अपना मत भी ज़ाहिर किया, किन्तु प्रेमा ने एक न सुनी। उसके लिये जैसे कुछ हुआ ही न हो।

इधर कवि-पत्नी को प्रेमा और अनजान का मेलजोल एक दम अच्छा नहीं लगा। वे कवि की नकेल अपने हाथों में रखना चाहती थीं। वे चाहती थीं एकाधिकार, इसलिये अपने अधिकारों का अपहरण उन्हें बहुत अखरा। नतीजा यह हुआ कि कवि के नीड़ में आये दिन खुट्टर-बुट्टर होने लगा। कवि ने अर्द्धाङ्गिनी को बहुत समझाया कि यह तो नये जमाने की हवा है, अब स्त्री पुरुष आपस में मिलते जुलते हैं, सिनेमा और बालरूम में जाते हैं, पोलो, गोल्फ और हाउसी में भाग लेते हैं, किन्तु श्रीमती अनजान ने एक न सुनी। उन का कवि पर से विश्वास उठ गया था। वे कवि की बातों में एक छिपी चाल का आभास पातीं। नतीजा यह हुआ कि कवि-परिवार में नित्य प्रति हल्दी पर हल्दीघाटी और पानी पर पानीपत का युद्ध मचने लगा। कवि के जी में आता कि इस गँवारिन का गला धर दबायें, किन्तु तभी उन्हें कानून और समाज का ध्यान आ जाता। उनके हाथ फड़क फड़क कर रह जाते, किन्तु उन्हें इसलिए नहीं उठाते कि इस मारधाड़ से बड़ी बदनामी फैलेगी और साथ ही प्रेमा को यदि पता लग गया तो वह उन्हें भेड़ की खाल में भेड़िया समझ लेगी। इस समय कवि की दशा 'साँप छछूँदर केरी' थी।

अनजान का वह उपन्यास जिसके लिए उन्होंने इतने हवाई किले बनाये थे ज्यों का त्यों पड़ा था। लिखने को केवल पचास पृष्ठ और था, किन्तु अब उन्हें प्रेमा ही से छुट्टी नहीं मिलती उपन्यास क्या लिखते, और फिर प्रेमा क्या नोबल प्राइज़ से कुछ कम थी। उन्हें पुस्तक प्रकाशित होने से पहिले पुरस्कार पेशगी मिल गया गया था। उन्होंने मन ही मन लल्लू लाल और 'पागल' को धन्यवाद दिया। उन्होंने सोचा भगवान जो करता है ठीक ही करता है। यदि यह सब न हुआ होता तो प्रेमा कैसे मिलती और यदि प्रेमा न मिलती तो यह सब कैसे होता जो हो रहा है।

फिर भी कवि के भीतर से कोई कहता कि यह सब सम्भव नहीं है। उन का परिवार है, उसका क्या करेंगे वे। उन्हें तब लगता जैसे वे एक ऐसी नाव पर चढ़े हैं जिसके पेंदे में छेद है, पानी भरता जा रहा है और उसका डूबना निश्चित है। यह और बात है कि वह जाकर कहाँ डूबे। वे निराश से हो जाते, किन्तु तभी उनके सामने सत्यस्नेह की मोहिनी मूरत यह कहती हुई प्रतीत होती—"लोग यह कहेंगे कि अनजान जी ने कला, अमर कला की साधना के लिए विवाह किया है।" अनजान जी को थोड़ा ढाढ़स मिलता। फिर सत्यस्नेह जो कहते प्रतीत होते--"शैली और बायरन को ही लीजिये।" सत्यस्नेह जो का यह वाक्य कवि को एकान्त में बड़ा ही प्रिय लगता। उन्हें प्रतीत होता जैसे वीणा के स्वरों पर तैरते हुये ये शब्द उनके कानों को गुदगुदा रहे हैं। प्रचण्ड वायु-वेग के थपेड़ों से काँपते हुये दीपक को जैसे कोई अपने आँचल से ढक ले उसी प्रकार अनजान जी पर सत्यस्नेह के वे शब्द छा जाते।

कवि अनजान कभी कभी सोचते कि प्रेमा उनके विषय में क्या सोचती होगी। उनके लिए क्या क्या सोचती होगी और अपने और उनके भविष्य के बारे में क्या सोचती होगी। कहीं ऐसा तो नहीं है कि प्रेमा उनसे साधारण शिष्टाचार वश ऐसा व्यवहार करती हो? यह सोच कर अनजान का कलेजा मुँह को आने को होता, किन्तु तभी डा० दुग्गल के वे शब्द उन्हें स्मरण हो आते--"यह तो आप तय मानिये कि उसकी जड़ में सेक्स है।" अनजान जी सहसा आश्वस्त हो जाते। सोचते यदि मेरे में इतना कुछ हो रहा है तो क्या प्रेमा में सब कुछ चुपचाप होगा—नीरस-नीरस, ताल के पानी की भाँति शान्त और मुर्दा। प्रेम की तो अजस्र धारा होती है। वह पहाड़ों को तोड़ कर आगे बढ़ जाती है, रेगिस्तानों को अपने आँचल में समेट लेती है, फिर क्या उनका प्रेम भला इतना निष्प्राण हो सकता है। अनजान की आँखें चमकने लगतीं और वे फिर हवा के घोड़े पर उड़ने लगते।

प्रोफेसर प्रियव्रत इन दिनों रूसो पर लिख रहे थे। उनका कहना था कि रूसो के सिद्धान्त भ्रामक हैं। उदाहरणार्थ रूसो के प्रसिद्ध वाक्य—Man was born free; but everywhere he is in chains (मनुष्य स्वतन्त्र पैदा हुआ, किन्तु चारो ओर जंजीरों से जकड़ा हुआ है) के विषय में उन्होंने कहा था --Man was born in chains; but everywhere he is free (मनुष्य जंजीरों में पैदा हुआ, किन्तु अब चारो ओर वह स्वतन्त्र है) अर्थात् जब बालक का जन्म होता है तो उस पर परिवार का बन्धन होता है। बिना परिवार या माता पिता के पालन-पोषण सम्भव नहीं। साथ ही शैशवावस्था में उसमें will to revolution (विद्रोह की इच्छा) नहीं रहती, उसका मानसिक विकास नहीं हुआ रहता, अतः वह शृंखलाओं में जकड़ा रहता है। किन्तु जब वह बड़ा होता है तो उस में अपने पैरों पर खड़ा होने की शक्ति आती है, उसमें will to revolution जागती है और उसका मानसिक विकास होता है, अतः वह स्वतन्त्र होता है। इसलिए प्रो० प्रियव्रत ने लिखा--"प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है।"

किन्तु क्या प्रोफेसर प्रियव्रत स्वतन्त्र थे? क्या उनके नातेदार, रिश्तेदार स्वतन्त्र थे? सत्यस्नेह और धनुर्धर क्या थे? और 'पागल'—वह पागल क्या है?

हम पुस्तकें पढ़ते हैं और पुस्तकें लिखते हैं, किन्तु क्या पुस्तकों में बताये ढंग पर जिया जा सकता है? पुस्तकों से जीना तो मुर्दों सा जीवन है, क्योंकि पुस्तकें स्वयम् मुर्दा हैं। मुर्दे भला किसी और को क्या जीवन देगें।

हमने विचारों का, कोरे और खोखले विचारों और सिद्धान्तों का, ढचर खड़ा कर रक्खा है सिर्फ दिखाने के लिये, अपनाने के लिए नहीं। यह रोमान्टिक ढचर केवल एक भूलभुलैय्या है, बालकों की आँखमिचौनी है—इसके सिवा कुछ भी नहीं। बड़ी बड़ी बातें, बड़े बड़े सिद्धान्त, बड़े बड़े उपदेश--सब खोखले हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे हम खोखले हैं, थोथे हैं। ज्ञान के रास्ते में ये विचार, ये सिद्धान्त और ये उपदेश पहाड़ बन कर खड़े हैं। हमारा सोच

ने का ढंग अपना नहीं, हमारा जीने का ढंग अपना नहीं, हम अपने नहीं। क्या बुरा है यदि वह नंगा-पागल हमारी दुनिया से, हमारी व्यवस्था से, हमारे रीति-रिवाजों से, हमारे नाते-रिश्तों से अलग-थलग अपनी ज़िन्दगी जीता है। कम से कम उसका जीवन तो अपना है, प्राकृतिक है, वास्तविक है। हमारे रीति-रिवाज, बोल चाल, हाव-भाव तथा जीने के अन्दाज़ में आखिर रक्खा ही क्या है। सिर्फ उलझन, झूठ, प्रपञ्च, क्षणिक सन्तोष—फिर वही क्रम, वही नीरसता, वही एकरूपता।

जब हमें झूठ बोलना होता है तो हम सिद्धान्तों का सहारा लेते हैं, पुस्तकें लिखते हैं, भाषण देते हैं, अखबारों में टिप्पणियाँ निकालते हैं। झूठ का इतना-इतना बड़ा पर्वत हमारे सामने खड़ा हो गया है कि उसकी निर्जीव चट्टानों से सिर टकराते ही हमारा जीवन कट जाता है। उसके पार ज्ञान की फैली हुई उप-त्यका तक हम पहुँच ही नहीं पाते।

कला और विज्ञान व्यर्थ हैं--केवल व्यर्थ। इन्होंने हमें क्या दिया? झूठ-केवल झूठ। झूठा जीवन, झूठी साँस, झूठे ठाट-बाट और झूठा गर्व-- मनुष्य होने का।

चेतना हमारे भीतर कहाँ है? हम केवल अपने को चेतन कहते हैं और यहीं हमारी चेतना का अन्त है। हम में चेतना नहीं उन्माद है, ज्ञान नहीं प्रमाद है। हमें चेतना तो मिली ही नहीं, ज्ञान हमारे से सहस्त्रों मील दूर है। फिर भी हम हैं कि अपने को चेतन कहे जाते हैं, ज्ञानार्जन करने का दिखावा करते हैं। इसलिये हममें कुछ नहीं है केवल हम pose (दिखावा) करते हैं कि हममें सब कुछ है—हम सब कुछ हैं—हमारे सिवा और कुछ भी नहीं, हम से ऊपर कुछ भी नहीं।

विनय का जी भिखारी यूनियन के सचिव-पद से ऊबने लगा था। उसने देखा कि जिन सपनों को सजा कर वह यहाँ आया था वे खोखले थे। न तो उनमें कोई दम था और न इस यूनियन में ही कोई दम है, अतः उसने यूनियन से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय कर लिया। कारण, उसने देखा कि धनुर्धर, अनजान, सत्यस्नेह, प्रियव्रत, प्रेमा--सभी अपना मतलब गाँठने में लगे हैं तो फिर वह क्यों चुप बैठे। आजकल उस पागल को लेकर बड़े झगड़े खड़े हो गये थे, अतः विनय ने भी सोचा कि क्यों न वह भी 'पागल' पर एक कहानी लिखे—रोमाण्टिक सी—और लेकर बम्बई चला जाय। प्रोड्यूसर फौरन स्वीकार कर लेंगे उसकी स्टोरी, क्योंकि पर्दे पर यह एक बिल्कुल ही नई चीज़ होगी। सिर्फ इतना होना चाहिये कि कहानी रोमाण्टिक हो। जैसे—

"वह आदमी बड़ा ही खूबसूरत था, बड़ा सहृदय था, बहुत बड़ा आर्टिस्ट था, दस बीस आदमी मुक्केबाजी में उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे। एक बार वह बम्बई से पूना जा रहा था—रेस खेलने। रेस क्या खेलने, नीलम से मिलने का बहाना भर था। ट्रेन सरसराती हुई चली जा रही थी। उधर नीलम स्टेशन पर उसका इन्तज़ार कर रही थी। इधर ट्रेन चलती जा रही थी कि एकबयक डिरेलमेण्ट हो गया। उधर नीलम स्टेशन पर चक्कर खाकर गिर पड़ी। उस नौजवान के सिर में चोट आई। वह अस्पताल में ले जाया गया। कुछ दिनों बाद पता चला कि उसकी पिछली याददाश्त खो गई है। नीलम की शादी एक सेठ से हो गई और यह आदमी तब से बेसहारा, मारा-मारा भटकता है दर दर।"

"कहानी तो अच्छी बन रही है, अगर गाने और संगीत अच्छा हुआ तो बस पिक्चर हिट जायगी।"— विनय ने सोचा।

अब उसे यह विश्वास हो गया कि उसकी कहानी अनूठी होगी और साथ ही उसे चमका देगी। फिर तो वह दस हजार से कम में किसी भी प्रोड्यूसर

को कहानी देगा ही नहीं। फिर एक दिन वह निर्देशन भी करने लग जायगा और फिर अपनी पिक्चर बनायेगा और तब हीरो के रोल में खुद उतरेगा।

मेरीन ड्राइव पर फ्लैट लेगा। किन्तु मेरीन ड्राइव में तो richmen's chawl (धनी लोगों के दरबे) हैं। वह तो बाँदरा हिल्स पर बँगला लेगा। बाँदरा हिल्स से सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य कितने सुहावने लगते होंगे। जब शाम को नीले समुद्र पर सिन्दूरी सूरज डूबता होगा तो लगता होगा जैसे नीले आँचल के पीछे कोई दम तोड़ता हुआ दीपक छिपाये जा रहा है।

"नीला आँचल! एक दिन मोहनी भी तो नीली साड़ी पहन कर आई थी, कितना भला लगता था उसका नीला आँचल। नीले आँचल से ढका मोहिनी का सिर, और उसमें चमकता हुआ उसका सिन्दूरी चेहरा।" सोचते-सोचते विनय तड़प उठा। उसकी मुट्ठी बँध गई। उसने फिर कल्पना का तार पकड़ा—

"मैं बता दूँगा मोहिनी के घर वालों को कि सफलता क्या होती है। मेरी सफलता, मेरे यश, मेरे धन पर भला कौन नहीं रीझेगा। फिर मैं और मोहनी योरोप और अमेरिका की सैर को जायेंगे। आल्पस् की छाया में हम अपना 'हनीमून' मनायेंगे; पेरिस में 'बैले' (ballet) देखेंगे। लन्दन के पिकेडली और हाइड पार्क में शाम को घूमने जायेंगे। और फिर न्यूयॉर्क, वाशिंगटन, हालीवुड, रियो-डि-जिनेरियो, हवाई, टोकियो, सिंगापुर, रंगून और फिर बम्बई--अपना बम्बई, हमारा बम्बई।"

सहसा विनय उठा और भिखारी यूनियन के प्रधान के नाम अपना त्याग पत्र लिखने लगा।

कामरेड धनुर्धर ने जब देखा कि छन्नूमल और उनका मण्डल भिखारियों से वही रवैय्या अपनाये हुये है तो उन्होंने झट 'कामर्शियल इस्टैबलिशमेण्ट्स वर्कर्स यूनियन' बनवा दिया। धनई माली—जो कि जीवनदान समिति से निकाल दिया गया था, अब एक चूने की दूकान पर काम करता था। धनुर्धर जी को धनई द्वारा यूनियन बनाने में बड़ी सहायता मिली, अतः कामरेड ने धनई को इस यूनियन का सेक्रेटरी बनवा दिया। इस प्रकार कामरेड और धनई के भगीरथ प्रयत्नों से यूनियन खड़ी हो गई।

यूनियन की पहली ही बैठक में प्रस्ताव पास किया गया कि कोई व्यक्ति आठ घण्टे से अधिक काम नहीं करेगा। हर व्यक्ति को हफ़्ते में एक दिन की छुट्टी मिलनी चाहिये। साथ ही साल में चौदह दिन की आकस्मिक छुट्टी तथा एक महीने की 'हक छुट्टी' (earned leave) मिले। हर कर्म्मचारी को वेतन महीने की दूसरी तारीख़ तक मिल जाना चाहिये। साथ ही किसी भी कार्य्यकर्त्ता को ४५) मासिक से कम वेतन नहीं मिलना चाहिये। जब कि एक साधारण मज़-दूर को डेढ़ रुपया रोज मज़दूरी के मिलते हैं तो ऐसे लोगों को जो कि सामान तौलते तथा मसालों की पुड़िया बाँधते हैं क्या ४५) मासिक अधिक है, जबकि इनको थोड़ा सा मानसिक परिश्रम भी करना पड़ता है।

वाणिज्य मंडल ने भी सख्त रुख़ अपनाया। सरकारी अधिकारियों से सहायता का आश्वासन था ही उन लोगों को, अतः उनके चिन्तित होने की कोई बात नहीं थी। लाला छन्नूमल ने मंडल के सदस्यों से अपील की थी कि वे कोई बीच का रास्ता अपनायें, किन्तु सदस्यों ने उनकी बातों पर उतना ध्यान नहीं दिया। मंडल ने माँगों को पूरा करने से साफ़ इन्कार कर दिया। साथ ही मंडल के प्रत्येक दूकानदार सदस्य ने अपने कर्म्मचारियों से कहा कि वे यूनियन छोड़ दें अन्यथा उनको नौकरी छोड़नी होगी।

यूनियन भी ज़ोर पकड़ गई। हड़ताल हो गई। सारे बाज़ार में प्रदर्शन हुआ। बनियों ने दूकानें खोलीं, बिक्री करने बैठे। नौकरों ने प्रदर्शन किया,

नारे लगाये, धरने दिये और खरीददारों को दूकानों पर जाने से रोकने लगे। नतीजा यह हुआ कि दो तीन दिन में ही सारा बाज़ार ठप सा हो गया। वाणिज्य मंडल में खलबली मच गई। हड़ताली ज्यों के त्यों डटे रहे। अन्त में वाणिज्य मंडल ने हार मान ली, क्योंकि पिछली रात को छन्नूमल तथा एक दो अन्य सदस्यों को हड़तालियों ने घेर लिया था। हड़तालियों की एक दो माँगे स्वीकार कर ली गईं। यूनियन जीत गई, उसकी जड़ जम गई। सत्यस्नेह जी की यह चाल भी विफल हुई। धनुर्धर जी की विजय हुई, अब उन्हें भिखारियों और दूकानों के कर्म्मचारियों का नेतृत्व प्राप्त हो गया था। उनकी स्थिति अब काफी मज़बूत हो गई थी। हड़बोंग तो काफी मचा, किन्तु सत्यस्नेह जी भी चुप बैठने वाले नहीं थे। उन्होंने हर्षनाथ को पकड़ा और उनसे कहा कि वे धनुर्धर की बढ़ती हुई शक्ति को रोकें अन्यथा आगामी चुनाव में उनके दल की खैरियत नहीं। साथ ही जनता पर भी धनुर्धर अपना रंग जमाते जा रहे हैं और इसी गुलगपाड़े में कहीं उनकी पार्टी अपना अस्तित्व न खो बैठे। हर्षनाथ जी के मन में सत्यस्नेह की बात पैठ गई। उन्होंने सत्यस्नेह जी को आश्वासन दिया कि वे जल्द ही धनुर्धर, उनके दल तथा यूनियनों को उखाड़ फेकेंगे।

"इशरत अली, देखो इसके पास कोई समान भी है।"—दारोगा नत्थूसिंह ने कहा।

सिपाही इशरत अली बोलने लगा—"जेब में एक स्क्रू ड्राइवर।"

"उस पर कुछ लिखा है?"—दारोगा ने पूछा।

"जी हाँ, नम्बर ५०१२—अमरीका का बना है।"

"आगे चलो।"

"पतलून की बाईं जेब में एक फटा सफ़ेद रूमाल। इस पर लिखा कुछ नहीं।"—इशरत अली ने एहतियातन बताया।

"ठीक।"

"पतलून की दाईं जेब में एक कागज, इस पर कुछ लिखा है।"

"क्या लिखा है?"

"लीजिये आप ही पढ़ लीजिये।"—इशरत ने कागज़ दारोगा की ओर बढ़ा दिया।

काफी भीड़ एकत्रित हो आई थी, तमाशा देखने को। भीड़ के एक आदमी ने एक दूसरे आदमी से पूछा—"भाई यह कौन था?"

"एक था कोई। अभी थोड़ी देर पहले मरा है।"—दूसरे ने उत्तर दिया।

तीसरा आदमी बोल पड़ा—"अरे यह साला पक्का चोर था। सड़क के लैम्प पोस्ट के बल्ब उतार लिया करता था। अभी सात साल की सज़ा से छूट कर आया था—कोई चार पाँच दिन हुये। आज फिर पड़ोस में चोरी करने घुसा था, लोगों ने पीछा किया और इसने जब अपने को घिरा हुआ पाया तो खुद को छुरा मार लिया।"

"नौजवान जान पड़ता है।"—चौथी आवाज़ आई।

"अरे साहब, आजकल के नौजवान जो न करें वह थोड़ा है।"—पास ही खड़े एक वृद्ध बोल उठे।—"हमारे जमाने में साहब यह नहीं था।"उन्होंने अपने समय की प्रशंसा करते हुये पास खड़े व्यक्तियों को सगर्व देखा।

"बेचारे को खाने पीने की तकलीफ़ रही होगी।"—एक बुढ़िया बोल उठी।—"पता नहीं इसके माँ बाप हैं भी या नहीं।"

"खाने पीने की तकलीफ़ नहीं, कुछ साले जरायम पेशा होते ही हैं। चाहते हैं दुनिया का राज मिल जाय और जब पाते कुछ नहीं तो जान दे बैठते हैं। पता नहीं किस पर तान तोड़ते हैं ये लोग। जान देते हो तो दो, ऐसे लोगों का मरना ही भला।"—तीसरी आवाज फिर आई।

"भाई जब विपत्ति आती है तो कुछ सूझता नहीं, आदमी प्राण देकर ही उस से छुटकारा पाना चाहता है।"—एक अधेड़ व्यक्ति बोल उठा।

"क्या प्राण इसलिये दिया जाय कि जीवन कठोर है?"—एक सज्जन ने तर्क दिया।

"किन्तु कठिनाइयों के सामने झुकना ही पड़ता है।"—अधेड़ व्यक्ति बोला।

"जो जीवन से प्रेम करना नहीं जानता वही कठिनाइयों से डरता है।" —उन सज्जन ने उत्तर दिया।

"जीवन से प्रेम कौन नहीं करता।"

"बिरले को ही जीवन से प्रेम करना आता है।"

"उस प्रेम का सूत्र क्या है?"

जीवन से प्रेम करना जीवन को उलझाना नहीं है। जो जीवन से प्रेम करता है वह उसे सम्भाल कर, साफ-सुथरा रखता है। मेरा यह मतलब कदापि नहीं है कि जीवन से प्रेम करने का अर्थ है ऐसी जगह छिपकर बैठना जहाँ मृत्यु न पहुँच सके या परिश्रम न किया जाय। वास्तव में हम जीवन के प्रति उदास हैं और उसे एक उत्तरदायित्व समझ कर काटते हैं और यही विरक्ति जब चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है तब व्यक्ति आत्महत्या जैसा जघन्य पाप भी कर डालता है।

घरघराती हुई एम्बुलेन्स आ पहुँची। लाश कुछ सिकुड़ी सी पड़ी थी। खून से कपड़े लथपथ हो गये थे परन्तु रक्त सूख जाने के कारण कुछ तन कर उठ

से गये थे, लगता था कि वे भी अब इस मिट्टी से छुटकारा पाना चाहते हों। मक्खियाँ लाश से कुछ ऊपर भिनभिना रही थीं। लहू सूख गया था और अब ऐसा कुछ क्या बच रहा था—उस निर्जीव मिट्टी में जो वे उसका स्पर्श करतीं। लाश स्ट्रेचर में रखकर एम्बुलेन्स-वान में लादी गई। वान चला गया, लोग भी चले गये, केवल कुछ खून के धब्बे रह गये उस स्थान पर जो शायद एक दो दिन में मिट जाँयगे।

यह जीवन का कैसा अन्त था दिव्य अथवा वीभत्स ?

मरने वाला चाहे जैसा भी रहा हो किन्तु उसने जीवन का अन्त क्यों कर लिया ? क्या वह उलझ गया था—दुर्दमनीय परिस्थितियों में ? क्या उसने हार मान ली थी—आपदाओं से ? क्या वह घबड़ा गया था—यातना से ? या वह जीवन से प्रेम करना नहीं जानता था ? क्या जीवन से प्रेम करना एक कला है जो साधना माँगती है ? किन्तु प्रेम में तो वासना का पुट होता है और जहाँ वासना होती है वहाँ जीवन कैसे उठ सकता है, कैसे निखर सकता है ? तो क्या यह मान लिया जाय कि जीवन और वासना में एकरुपता है ? यदि जीवन और वासना में एकरुपता है तो फिर जीवन को वासना धर दबायेगी, फिर निखार कैसे सम्भव होगा, जीवन उठेगा कैसे ? किन्तु जब वासना साधना का योग पाती है तो वह कला बन जाती है, फिर प्रेम में त्याग आता है, तन्मयता आती है, विस्मरण आता है। जो जीवन में तन्मय होकर, अपनापन भुला कर और जीवन का बन कर जीता है वह कलाकार है। जिसमें अपनत्व ज़ोर मारता है वही उलझता है, उसमें मोह जागता है और फिर जीवन की मृगमरीचिका में वह उलझ कर रह जाता है। जीवन स्वयम् अपना साध्य है। जीवन को पूँजी मान कर उसका मनमाना प्रयोग करना अन्याय है।

विद्यार्थियों के झोंक में हाथ डालने के कारण पत्रकार वभ्रुवाहन जी की प्रतिष्ठा कुछ कम हो गई थी। आज तक उन्होंने कितने ही बड़े-बड़े नेताओं, अधिकारियों तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को लथेड़ा था, किन्तु उन्हें कोई नहीं मात दे सका था। यह पहला ही अवसर था जब उन्हें मुँह की खानी पड़ी थी। वभ्रु जी का ऐसा विश्वास था कि यह विद्यार्थी आन्दोलन मात्र धनुर्धर के ही कारण इतना उग्ररुप धारण कर सका। अतः धनुर्धर का नाम सुन कर उन्हें बुखार चढ़ आता और विद्यार्थी यूनियन का तो नाम लेते ही उन्हें जूड़ी आने लगती। इस कारण वभ्रु जी धनुर्धर को नीचा दिखाने की ताक में थे। उन का स्वाभिमान रीढ़ टूटे हुये साँप की भांति विवश फुफकार रहा था। जब कामर्शियल इस्टैबलिशमेंट्स वर्कर्स यूनियन ने हड़ताल की तो वभ्रु जी के पत्र 'वीरभद्र' ने उसकी खूब निन्दा की और जनता तथा अधिकारियों से ऐसे बखेड़ों को दबाने की अपील की, किन्तु हड़तालियों की विजय हुई और वभ्रु जी के प्रयत्न निष्फल रहे।

एक दिन सत्यस्नेह तथा हर्षनाथ वभ्रुवाहन के घर पहुँचे। हर्षनाथ ने वभ्रु जी पर लाई गई आपदा पर खेद प्रगट किया और उनसे यह कहा कि यदि उनका पत्र कुछ सहयोग दे तो वे धनुर्धर को ठीक कर सकते हैं। वभ्रु जी ने सहर्ष अपनी तथा अपने पत्र की सेवायें देने का वचन दिया। धनुर्धर और उनकी यूनियनों के विरुद्ध फिर एक मोरचा बन गया।

× × ×

हर्षनाथ प्रोफेसर प्रियव्रत के श्वसुर लाला रोकड़मल से मिले। लाला रोकड़मल को उन्होंने बड़े-बड़े ठेके दिलवाये थे, अतः रोकड़मल हर्षनाथ का बहुत लिहाज़ करते थे। हर्षनाथ ने लाला जी से कहा कि वे प्रो० प्रियव्रत के घर चल कर उनसे कहें कि वे धनुर्धर की यूनियनों की सहायता न करें। लाला जी हर्षनाथ के साथ प्रोफेसर के घर गये। प्रोफेसर से यूनियनों का साथ न देने के लिये कहा गया। प्रोफेसर ने बताया कि यह सिद्धान्त की बात है

और फिर वे तो साक्षरता-प्रसार के विचार से भिखारियों के बीच थोड़ा बहुत सेवा-कार्य्य करवा रहे हैं। उन्होंने कहा कि मैं तो चाहता हूँ कि ये भिखारी दरवाजे-दरवाजे भीख माँगने के स्थान पर अपने पैरों पर खड़े हों, और इसके लिये थोड़ा पढ़ना-लिखना आवश्यक है। वास्तव में प्रियव्रत सत्यस्नेह से नाराज़ थे और चाहते थे कि धनुर्धर का पक्ष मज़बूत रहे, किन्तु लाला रोकड़मल ने उन्हें बहुत दबाया और अन्त में उन्होंने इतना स्वीकार किया कि वे किसी भी पक्ष का साथ नहीं देंगे। हर्षनाथ को इतने से ही सन्तोष हो गया।

× × ×

प्रोफेसर प्रियव्रत ने अपने सभी छात्रों को—जो कि भिखारियों को अक्षर ज्ञान करवाते थे—वापस बुला लिया। शाम का स्कूल बन्द हो गया। धनुर्धर ने जब यह देखा तो उन्हें लगा जैसे वे चौसा का युद्ध हार गये। भिखारियों को भय हुआ कि कहीं वे किसी और झमेले में न फँसे अतः उन्होंने भी चुप्पी साध ली।

× × ×

बभ्रुवाहन जी के पत्र 'वीरभद्र' में आये दिन हाहाकारी टिप्पणियाँ और सम्पादकीय निकलने लगे—धनुर्धर और उनकी यूनियनों के विरुद्ध। बभ्रु जी ने देखा कि यही एक अच्छा मौका है—धनुर्धर और उनकी पार्टी को उखाड़ फेंकने का।

× × ×

लाला रोकड़मल ने—जो कि नगर के एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे—वाणिज्य मण्डल के सदस्यों से कहा कि वे अपनी दूकानों पर काम करने वालों के साथ पहले जैसा व्यवहार करें; और यदि कोई भी किसी प्रकार का विरोध करे तो उसे तुरन्त निकाल दें। लाला रोकड़मल की छत्रछाया में वाणिज्य मण्डल ने सीधी कार्य्यवाही प्रारम्भ की। दूकानों के कर्म्मचारी दबा दिये गये।

धनुर्धर जी के शब्दों में पूरी पूँजीवादी व्यवस्था उनके विरुद्ध आ डटी।

हर्षनाथ एक प्रसिद्ध नेता थे। नगर में उनकी बड़ी धाक थी। उन्होंने व्यापारियों को परमिट और ठेके दिलवाया था, अतः व्यापारी वर्ग उनसे दबता था। नगर की कई सांस्कृतिक संस्थाओं को उनका आशिर्वाद प्राप्त था, अतः उक्त संस्थाओं को सरकारी अनुदान सुचारु रूप से मिलता था। म्युनिसिपैलिटी के सदस्य होने के कारण प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के अध्यापक उनके यहाँ हाज़िरी देते रहते। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्ति उनका इसलिए लिहाज़ करते कि किसी भी दिन वे कुछ भी हो सकते थे और इस समय भी कुछ कम न थे। बड़ा से बड़ा काम देखते देखते कर डालते। सभा-समारोहों में उनकी उपस्थिति मूल्यवान समझी जाती। वैसे वे स्वयम् भी सभाओं की अध्यक्षता तथा उद्घाटन कार्य्य करते। धनुर्धर जी का कहना था—"कुछ दिन में हर्षनाथ पान की दूकानों का भी उद्घाटन करने लगेंगे।"

राजनीति के अखाड़े में उनकी टक्कर का कोई नहीं था। अफवाह थी कि आठ साल पहले उन्होंने अपने कुछ प्रतिद्वन्दी म्युनिसिपल काउन्सिलरों को, जो उनके दल के उम्मीदवार के विरुद्ध चेयरमैन के चुनाव में विरोधी दल के उम्मीदवार को मत देने वाले थे, वोट के एक दिन पहले नगर के बाहर एक मकान में बन्द करा दिया था, और उनमें से दो सदस्यों को जो उस दिन नहीं मिल पाये थे, उन्होंने रात को पकड़वा कर और क्लोरोफार्म सुँघा कर तूफान मेल के एक फर्स्ट क्लास के डिब्बे में बन्द करा दिया था और वोट के दिन जब उनकी आँख खुली तो उनकी ट्रेन शस्य श्यामला बंग भूमि के अंचल में उड़ती जा रही थी। हर्षनाथ यदि घबड़ाते थे तो केवल कामरेड धनुर्धर से और कामरेड धनुर्धर भी हर्षनाथ की ओर से सावधान रहते थे। हर्षनाथ ने कुछ दिन पहले कामरेड धनुर्धर को उखाड़ फेंकने का भगीरथ प्रयत्न किया था, किन्तु कामरेड भी अंगद के पाँव से कुछ कम नहीं थे।

वेषभूषा तो हर्षनाथ की बिल्कुल सादी थी, किन्तु धनुर्धर जी का कहना था कि उन्होंने लाखों रुपये इकट्ठा कर लिया है। धनुर्धर जी के दल वाले तो उनके लेने देने के विषय में भी जाने क्या-क्या कहा करते थे, किन्तु राजनैतिक

प्रतिद्वन्दियों का तो काम ही है कि अच्छे से अच्छे लीडर को भी बदनाम किया करें। फिर भी हर्षनाथ जी का जीवन सुखी था। करने को केवल नेतागिरी, रहने को निज का मकान, चढ़ने को मोटर और खेलने को गोल्फ। देश को स्वराज्य मिलने के कुछ दिन उपरान्त गोल्फ खेलना हर्षनाथ की 'हॉबी' हो गया था। कारण यह था कि हर्षनाथ जी कुछ मोटे हो रहे थे, क्योंकि देश स्वतन्त्र हो गया था और देश को मुक्त कराने के हेतु अब और खून जलाने की आवश्यकता नहीं थी। इस प्रकार वे गोल्फ खेलने का आनन्द भी उठाते और मोटापे का इलाज भी हो जाता।

× × ×

कामरेड धनुर्धर को उखाड़ने के लिये हर्षनाथ ने कुछ विश्वसनीय भिखारियों को भिखारी यूनियन का सदस्य बनने के लिये भेजा। उनका विचार था कि इन्हीं भिखारियों के द्वारा भिखारी यूनियन का ढाँचा उलट दिया जायगा। भिखारी यूनियन के शिथिल पड़ते ही 'पागल' को पागलखाने भिजवा दिया जायगा और फिर धनुर्धर को रगड़ना आसान हो जायगा।

हर्षनाथ के भेजे हुये भिखारी भिखारी यूनियन में भर्ती कर लिये गये। कामरेड धनुर्धर को हर्षनाथ की इस गहरी चाल का आभास नहीं हुआ था, यद्यपि वे काफी सतर्क हो गये थे और शीघ्र ही किसी मुठभेड़ की आशा करते थे। कामरेड भी हर्षनाथ को परास्त करने की योजना कार्यान्वित करने में लगे थे। वे दृढ़निश्चय थे कि अब की बार हर्षनाथ को नहीं छोड़ेंगे।

कवि अनजान आजकल अपनी कल्पना के सहारे उस लोक की सैर कर रहे थे जहाँ रवि शशि भी नहीं पहुँच सकते । प्रेमा से उनका साथ खूब बढ़ गया था । आजकल लिखना उन्होंने एकदम छोड़ दिया था, क्योंकि जब स्वयं महाकाव्य के रूप में उनकी प्रेमगाथा जमती जा रही थी तो फिर कविता और उपन्यास में रक्खा ही क्या था । इधर वे कई बार डाक्टर दुग्गल से मिल चुके थे और डाक्टर ने उन्हें पूरा आश्वासन दिया था कि उनकी लीला पूरी होकर रहेगी, क्योंकि स्त्री-पुरुष के प्रत्येक कार्य की जड़ में 'सेक्स' रहता है । डाक्टर ने उन्हें यह भी राय दिया था कि उस 'सेक्स' को केवल उभाड़ने की आवश्यकता है, सो कवि आजकल प्रेमा पर सदैव छाये रहते । वे उसे अपने सिवा किसी अन्य के विषय में सोचने तक का अवसर ही नहीं देना चाहते थे । इधर नगर के कई ज्योतिषियों को सैकड़ों रुपये देकर उन्होंने कुंडली पढ़वाई थी और कवच बनवाया था । ज्योतिषियों ने भी उन्हें पूरा विश्वास दिलाया था कि उनका दूसरा विवाह होकर रहेगा । अतः अनजान इस ओर से निश्चिन्त हो गये थे । अब वे केवल अकेले में बैठ कर मीठे मीठे सपने सजाते और उनका आनन्द लेते ।

इधर कवि के अंतःपुर में कुहराम मचा रहता । कवि को नाना प्रकार के व्यंग बाण अपने कोमल कलेजे पर लेने पड़ते, किन्तु यह सब झेल कर उन्हें ऐसा लगता जैसे वे लंकादहन के हनुमान हों जिसकी पूँछ पर कपड़ा लपेट कर तेल डाला जा रहा हो कि वह जल जाय । वे सोचते कुछ दिन की बात और है फिर कौन सुनता है इस गँवारिन की खाँव-खाँव, प्रेमा के आगे वैसे ही भीगी बिल्ली बन जायगी ।

× × ×

कवि अनजान पर नशा सा छाया हुआ था । वे आँखे मूँदे सोच रहे थे अपने भविष्य के मधुमय जीवन के विषय में कि सत्यस्नेह जी कमरे में आये । कवि ने उन्हें सादर बैठाया । सत्यस्नेह ने प्रश्न किया --"आजकल कुछ लिख नहीं रहे हैं क्या, अनजान जी ?"

"भाई, एक पागल पर लिख रहा था किन्तु आजकल समय नहीं मिलता, अतः उपन्यास अभी अधूरा ही पड़ा है।"--अनजान जी अन्यमनस्क से बोले। उनको ऐसा लगा कि अपने कर्त्तव्य के प्रति उदासीन होकर वे अपने प्रति अन्याय कर रहे हैं, किन्तु थोड़े ही दिनों की बात तो है, फिर तो प्रेमा आ ही जायेगी और यदि वे नहीं लिखेंगे तो उनसे डाँट-डाँट कर लिखवायेगी। उनके मन में यह इच्छा उभड़ पड़ी कि प्रेमा उन्हें खूब डाँटे, खूब डाँटे और वे सुने और मुस्कराते जाँय और फिर प्रेमा खीझ कर चली जाय। फिर वे उसे मनाने जाँय और वह खूब तंग करे उनको। वे मनाते जायँ और वह न माने, फिर वे भी रुठ कर सो जायँ और फिर आधी रात को प्रेमा थाली में खाना लेकर उनके पास आकर उनसे खाने का आग्रह करे, किन्तु अब की वे न मानें।

"भाई अनजान जी, मैं आपके पास एक आवश्यक कार्य्यवश आया था।"—सत्यस्नेह जी ने कवि का सपना भंग कर दिया।

"आज्ञा दीजिये ?"--सौजन्यवश कवि बोले, किन्तु उन्हें अपने स्वप्न का टूटना बहुत अखरा। वास्तव में आजकल कवि का हृदय पनवाड़ी की दूकान का शीशा बन गया था जिसमें दिन में सैकड़ों बार विभिन्न प्रकार के प्रतिबिम्ब आते जाते। जिस प्रकार सोडे की बोतल खुलते ही बड़े जोर से उफनती है और फिर मिनट भर में ठंडी हो जाती है ठीक उसी प्रकार कवि के भीतर एक कल्पना उफनती, फिर शान्त हो जाती और फिर दूसरी बोतल खुलती और उफनती।

सत्यस्नेह देख रहे थे कि कवि के मुख-मडल पर भाव गरमी के बादलों की तरह आ जा रहे थे, अतः वे बोले —"आप कुछ अस्वस्थ तो नहीं है, अनजान जी ?"

"स्वस्थ ही समझिये।"--कवि ने वाक्य कुछ इस रसभरे अन्दाज़ से कहा कि सत्यस्नेह ताड़ गये। उन्होंने कवि को चढ़ाना चाहा। बोले—"मैंने आपसे जो निवेदन किया था उस पर कुछ विचार किया आपने ?"

अब कवि सोडे की बोतल की भाँति उफने। बोले—"आप तो पारखी हैं सत्यस्नेह जी, भला आप की मन्त्रणा पर बिना सोचे कैसे रह सकता हूँ।"

"तो क्या निर्णय किया आपने ?"

"मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है।"

"बात यह है कि अनजान जी कि आपको सम्भाल कर रखने की आवश्यकता है। अनुवीक्षण यन्त्र शीशे की आलमारी में सम्हाल कर रक्खा जाता है और फावड़ा मिट्टी में सना इधर उधर पड़ा रहता है। कलाकार समाज का अनुवीक्षण यन्त्र है, अतः उसे सम्भाल कर रखने की बड़ी आवश्यकता है।"

अनजान जी को सत्यस्नेह के विचार बहुत ही जँचे। उन्हें लगा जैसे इतने बड़े नगर में केवल एक सत्यस्नेह ही रत्नपारखी हैं। मुस्कराते हुये बोले—"मैंने तो सब आप पर छोड़ दिया है।"

"योग्य सेवा के लिये सदैव तत्पर हूँ।"—सत्यस्नेह ने कवि को थोड़ा और चढ़ाया।

"आप कुछ कार्य्यवश मेरे यहाँ आये और मैं छेड़ बैठा अपना राग। आज्ञा दीजिये भाई सत्यस्नेह जी, किस सेवा के योग्य हूँ मैं ?"

"आपने तो सुना ही होगा अनजान जी कि यहाँ एक भिखारी यूनियन बनी है,और उसमें एक पागल भी है। इन लोगों का काम ही है कि भद्र व्यक्तियों और पवित्र संस्थाओं को बदनाम करें—अपने लाभ के लिये।"

"निःसन्देह।"—अनजान ने हामी भरी।

"आपकी डाक्टर दुग्गल से बनती है और वे सम्भवतः उस पागल की परीक्षा भी कर चुके हैं।"

"जी हाँ, एक लल्लू नाम का भिखारी था वही उसे ले आया था।"—अनजान जी बोले।

"उसके कारण आजकल बड़ा ही उत्पात फैला हुआ है और उसे यहाँ से हटाना आवश्यक सा प्रतीत होता है। यदि आप डा० दुग्गल से एक सर्टिफिकेट लिखा दें तो बड़ा काम बने।"

"दुग्गल तो मेरे मित्र हैं, और एक सही सार्टिफिकेट देने में उन्हें कोई एतराज़ नहीं होगा, किन्तु मैं धनुर्धर जी को रुष्ट नहीं करना चाहता।"

"इसमें धनुर्धर जी या प्रेमा के रुष्ट होने का कोई कारण नहीं देख पड़ता। यदि धनुर्धर, प्रेमा या आपको उस पागल से सहानुभूति है तो यह उचित ही है, किन्तु हम पागल को कष्ट या हानि नहीं पहुँचाना चाहते, हम तो केवल उसके विकृत मन का सुधार चाहते हैं। यहाँ रह कर तो वह अपनी और समाज की हानि कर रहा है और हमारी इच्छा है कि उसे फिर सभ्य मनुष्य बना दें।"

"यदि ऐसा है तो मैं सहर्ष तैय्यार हूँ। डा० दुग्गल अभी तो पहाड़ से लौटे नहीं, उनके आते ही मैं आपको सर्टिफिकेट ला दूँगा।"

सत्यस्नेह चले गये। अनजान के भीतर फिर उफान आया, वे सारा संसार भूल गये। वे तो आजकल सौजन्यवश लोगों से बातचीत कर लिया करते थे अन्यथा उन्हें फ़ुरसत कहाँ।

हर्षनाथ अभी पूरी तरह कामरेड धनुर्धर के विरुद्ध मोर्चाबन्दी नहीं कर पाये थे कि कामरेड ने एक अचूक प्रहार कर दिया। हर्षनाथ म्युनिसिपल बोर्ड के सदस्य थे, अतः कामरेड का यह कहना था कि हर्षनाथ ने कुछ ऐसी संस्थाओं को म्युनिसिपल बोर्ड द्वारा अनुदान दिलवाया है जिनका कोई अस्तित्व ही नहीं है अर्थात् वे हैं ही नहीं। कामरेड ने नागरिकों तथा अधिकारियों से अपील किया कि वे इस ओर ध्यान दें। हर्षनाथ ने जब यह सुना तो लगा जैसे उन्हें काठ मार गया हो। उन्हें यह आशा कदापि नहीं थी कि कामरेड इतनी गहराई तक पहुँच सकते हैं।

कामरेड की अपील का कोई नतीजा नहीं निकला। जनता ने कोई ध्यान नहीं दिया और अधिकारी वर्ग ने भी इसे केवल प्रोपेगेण्डा समझा; अतः कामरेड को थोड़ी सी निराशा हुई, किन्तु वे दूरदर्शी थे अतः उन्होंने साहस नहीं छोड़ा।

फिर एक दिन म्युनिसिपल बोर्ड में खलबली मच गई। अधिकारी सतर्क हो गये। हर्षनाथ पर लगाये गये आरोपों की जाँच पड़ताल प्रारम्भ हो गई। कारण यह था कि कामरेड के दल के एक विधायक ने विधान सभा में प्रश्न किया था और खेद प्रकट किया था कि सरकार ऐसे स्कैन्डल्स (ठगियों) पर ध्यान नहीं देती।

हर्षनाथ बुरे फँसे। उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि यह सब इतने शीघ्र हो जायगा। वे अपने को अजेय समझते थे और इस कारण इन सब बातों की ओर कभी ध्यान नहीं देते थे। उनके मित्र और परिचित भी उनसे किनारा कसने लगे। व्यापारी वर्ग जो उनकी हाँ-हुजूरी में लगा रहता, अब उनका साथ छोड़ने लगा। लाला रोकड़मल भी--जो उनके पुराने मित्र थे और जिनके बड़े बड़े काम हर्षनाथ ने बनवाये थे—अब उनका विरोध करने लगे थे। स्वयम्

उनके दल के कुञ्जबिहारी जो (जिन्हें लोग कुञ्जी जी कह कर पुकारते थे) तथा हिन्दुस्तानी जी (जिनका असली नाम पत्तरुदीन था) में होड़ लगी थी कि हर्ष-नाथ के पतन के बाद उनकी चरणपादुका का अधिकारी कौन होगा। हर्षनाथ जूलियस सीज़र की भाँति घिर गये थे और सत्यस्नेह मार्क एन्टनी की भाँति अभी दूर थे।

धनुर्धर द्वारा लगाये गये आरोपों में सत्य कहाँ तक था इसे कोई नहीं देखता, चूँकि मामला इतना रंग पकड़ चुका था इस कारण सभी को उन आरोपों पर विश्वास सा हो गया था। लोगों का यह कठोर निर्णय हर्षनाथ को बहुत अखरा, किन्तु बेचारे करते भी क्या, परिस्थितिवश विवश थे। हर्षनाथ ने वभ्रुवाहन जी से इन आरोपों के विरुद्ध 'वीरभद्र' में एक सम्पादकीय निकालने को कहा, किन्तु वभ्रु जी दूध-जली बिल्ली की भाँति सम्हल कर चलना चाहते थे। वभ्रु जी को यह डर था कि कहीं धनुर्धर उन्हें भी न उलझा दें--किसी झमेले में। अभी अधिक दिन नहीं हुए कि उनका प्रेस और वे नष्ट होते-होते बचे थे; अब फिर सम्पादकीय निकालकर वे हाय-तोबा नहीं मचवाना चाहते थे।

हर्षनाथ ने कवि अनजान से कहा। कवि बोले--"भाई हर्षनाथ जी, मैं कर ही क्या सकता हूँ, कहिये तो आपको निर्दोष सिद्ध करते हुये एक कविता लिख दूँ।"

केवल सत्यस्नेह ने हर्षनाथ को हर प्रकार से सहायता देने का वचन दिया। हर्षनाथ को सत्यस्नेह के शब्दों से बड़ी सान्त्वना मिली और उन्होंने जमकर लड़ने का निर्णय किया।

लाला रोकड़ मल ने प्रस्ताव किया था कि यदि हर्षनाथ गङ्गा के तट पर मुंडन करवा कर और ब्राह्मण-भोजन करा कर प्रायश्चित कर लें तो वे उनका साथ देंगे। हर्षनाथ ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया, क्योंकि वे अपने को निर्दोष मानते थे।

हर्षनाथ पर लगाये गये आरोपों की छान-बीन और जाँच-पड़ताल चल रही थी--चींटी की चाल।

कामरेड धनुर्धर के नाम पार्टी के पोलिटब्यूरो का पत्र आया था। उनसे पूछा गया था कि उन्होंने क्यों भिखारी यूनियन बनाया जबकि भिखारी सर्वहारा वर्ग के सदस्य नहीं है। भिखारी यूनियन बनाने के पहले उन्होंने पोलिटब्यूरो से इस विषय में आदेश क्यों नहीं माँगा। और यदि भिखारी यूनियन बनी भी तो उसका संगठन 'सेल' के ढंग पर क्यों नहीं किया गया। कामरेड को अपनी गलती का आभास हुआ। उन्होंने सोचा कि उन्हें पोलिटब्यूरो से अवश्य आज्ञा प्राप्त कर लेनी चाहिये थी।

कामरेड ने पोलिटब्यूरो को लिखा कि भिखारी वर्ग भी सर्वहारा वर्ग का एक अंग है तथा भिखारियों को वे मज़दूर बना रहे हैं। वास्तव में इन निकम्मे व्यक्तियों को सर्वहारा वर्ग का सदस्य बनाना और उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करना ही उनका ध्येय है-- उन्होंने आगे लिखा।

पोलिटब्यूरो के पत्र ने कामरेड को चक्कर में डाल दिया था और वे अब स्वयं इस यूनियन से छुटकारा पाना चाहते थे, क्योंकि अब अधिक दिन तक वे पोलिटब्यूरो को अँधेरे में नहीं रख सकते थे। और पोलिटब्यूरो जाने क्या रुख अपनाये, इन सब घटनाओं पर। किन्तु कामरेड को सत्यस्नेह का पतन पोलिटब्यूरो से भी प्रिय था, अतः उन्होंने अपने कार्य्यक्रम में ज़रा भी ढील नहीं आने दिया। इतना अवश्य था कि उन्हें पोलिटब्यूरो की ओर से भी खटका हो गया था, अतः वे काफी चौकन्ने हो गये थे।

कामरेड ने भिखारी यूनियन की एक अति आवश्यक मीटिंग बुलाई। उसमें प्रश्न रक्खा गया कि यूनियन के एक सदस्य (पागल) का चित्र पेम्फ़लेट में छपवा कर जीवनदान संस्था के सचिव, सत्यस्नेह ने बहुत सारा चन्दा एकत्रित किया है, अतः यूनियन जनता से यह अपील करे कि सत्यस्नेह के विरुद्ध उचित कार्य्यवाही की जाय और जीवन दान संस्था उनको सचिव पद से हटा दे। प्रस्ताव का विरोध हर्षनाथ के भेजे हुये भिखारियों ने ज़ोर से किया, किन्तु प्रस्ताव बहुमत से पास हो गया। प्रस्ताव में इतना और जोड़ा गया कि यदि जनता और जीवनदान संस्था के अधिकारियों ने इस ओर ध्यान नहीं

दिया तो यूनियन प्रदर्शन का आयोजन करेगी। यदि प्रदर्शन आवश्यक हुआ तो उसके लिये समय और तिथि प्रधान (धनुर्धर) निश्चित करेंगे।

प्रस्ताव का प्रचार धनुर्धर जी के दल के पत्र 'ज्वालामुखी' ने जोरों से किया। उस पागल की तस्वीर मुखपृष्ठ पर छापी गई और उसके नीचे प्रस्ताव का उद्धरण दिया गया, किन्तु जनता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा और जीवनदान संस्था के अधिकारियों ने भी इस ओर ध्यान नहीं दिया, अतः अब प्रदर्शन आवश्यक हो गया।

जीवनदान संस्था के संचालकों को यह प्रस्ताव जँचा तो, किन्तु वे इस पर कोई कार्य्यवाही करके संस्था की प्रतिष्ठा नहीं घटाना चाहते थे। यदि एक बार उन्होंने कोई ऐसी कार्य्यवाही कर दिया तो आये दिन संस्था के निजी मामलों में बाहरी लोग हस्तक्षेप करने लगेंगे और फिर संस्था को चलाना दुष्कर हो जायगा। चूँकि यह एक hrestige issue (प्रतिष्ठा का प्रश्न) था, अतः इस मामले में झुकना श्रेयस्कर नहीं था। हालाँकि संस्था में भी कई ऐसे प्रभावशाली व्यक्ति थे जो सत्यस्नेह का पतन चाहते थे, किन्तु यह बात नहीं थी कि सत्यस्नेह की अपनी कोई पार्टी नहीं थी। सत्यस्नेह का दल हर सम्भव प्रयत्न करके उन्हें बनाये रखने के पक्ष में था। संस्था में जो दो चार निष्पक्ष व्यक्ति थे उनका मत था कि उस पागल की तस्वीर छपवा कर चन्दा एकत्रित करना अनुचित है तथा उससे भी अनुचित है उस धन का दुरुपयोग। दूसरे इन नित्य प्रति के झगड़े-झमेलों से संस्था की प्रतिष्ठा और साख उखड़ती जा रही है। संस्था को सत्यस्नेह ने अपने से एकाकार कर रक्खा था और वे अपने स्वार्थ तथा प्रतिष्ठा के लिये संस्था के उच्चादर्शों की अवहेलना कर रहे थे। अतः संस्था के आदर्शों की रक्षा और पवित्रता को अक्षुण्ण रखने के लिये सत्यस्नेह का न रहना आवश्यक था। किन्तु सत्यस्नेह के विरुद्ध बोलने का किसी को साहस नहीं होता था, क्योंकि उनके झमेले में कोई नहीं पड़ना

चाहता था । दूसरे सत्यस्नेह संस्था के संस्थापकों में से थे; उनकी सेवायें निःसन्देह अमूल्य थी, अतः इन सब बातों का भी ध्यान रखना पड़ता था ।

× × ×

प्रोफेसर प्रियव्रत ने जब यह सब सुना तो उन्होंने सोचा कि यदि यह मामला कुछ दिन और इसी प्रकार लटके तो अच्छा है । प्रोफेसर विश्वविद्यालय के वाइस-चान्सलर पद के लिये खड़े हो रहे थे, अतः वे धनुर्धर और सत्यस्नेह दोनों का ही सहयोग चाहते थे, क्योंकि दोनों ही के प्रभाव में विश्वविद्यालय के 'कोर्ट' के काफी सदस्य थे । यों तो व्यक्तिगत रूप से वे भी सत्यस्नेह के विरुद्ध थे और उनका पतन चाहते थे, किन्तु यह समय अपना काम निकालने का था, अतः उन्होंने बीच का रास्ता अपनाने का निर्णय किया ।

प्रोफेसर प्रियव्रत कामरेड धनुर्धर के घर गये । कामरेड ने प्रोफेसर की बड़ी आवभगत की । प्रोफेसर ने कामरेड से कहा—"मैं तो केवल आप ही के भरोसे खड़ा हो रहा हूँ ।"

कामरेड प्रियव्रत को भली भाँति जानते थे । वे प्रियव्रत की नस नस पहचानते थे, अतः बोले—"मेरा तो कोई विशेष प्रभाव नहीं हैं ।"

"क्यों नहीं धनुर्धर जी, आप ही पर तो सारा दारोमदार है । बिना आप के यह काम नहीं होगा । यदि आप हाथ खींच लेंगे तब तो फिर मेरे लिये नाम वापिस ले लेना ही अच्छा होगा ।"—प्रोफेसर बोले ।

"नहीं प्रियव्रत जी, मेरा यह मतलब नहीं है; मैं तो केवल यह कह रहा था कि मैं किस योग्य हूँ । आप मेरी ओर से निश्चिन्त रहें, मुझ से जो बन पड़ेगा करूँगा ।"

प्रोफेसर को कुछ सन्तोष हुआ । पूरा भरोसा तो वे धनुर्धर अथवा सत्यस्नेह जैसे व्यक्तियों पर कर नहीं सकते थे । बोले—"अब समय करीब है, अतः आप को भी थोड़ा कष्ट करना होगा ।"

"मैं आज ही से कार्य्यारम्भ कर दूँगा, आप इसकी चिन्ता न करें ।"—धनुर्धर ने विश्वास दिलाते हुये कहा ।

प्रोफेसर ने धनुर्धर को चढ़ाने के विचार से कहा—"आप के पत्र ने तो खूब धज्जियाँ उड़ाया है, सत्यस्नेह और जीवनदान संस्था की ।"

"यह तो वास्तविकता है, प्रोफेसर ।"—धनुर्धर बोले ।

"निःसन्देह ।"—प्रोफेसर ने स्वीकार किया ।

"इधर आप ने तो हमारा साथ देना ही छोड़ दिया । आजकल सत्य को सत्य सिद्ध करना बड़ा कठिन है ।"

"बात यह है धनुर्धर जी कि मैं इधर इस मामले में उलझ गया हूँ इसलिये समय नहीं मिलता, किन्तु मेरी सहानुभूति आप के साथ है, और इस चक्कर से निकलते ही मैं आप के साथ हो जाऊँगा ।"—प्रोफेसर ने कामरेड पर मोहनी डालने के विचार से कहा ।

किन्तु कामरेड भी घुटे हुये थे। उन्होंने कहा—"हमें तो आपका आशीर्वाद चाहिये।"

कामरेड जानते थे कि प्रियव्रत इस समय ज़रूरतमन्द हैं, यदि इस समय इन से लाभ न उठाया गया तो वे फिर हाथ नहीं आने के। अतः बोले—

"शीघ्र ही हमारा प्रदर्शन होने वाला है यदि आप कुछ सहयोग दें तो आभारी रहूँगा।"

"अवश्य, अवश्य। किन्तु यदि आप मेरी सलाह माने तो कुछ दिन रुक जायँ। मैं थोड़ी सी फ़ुरसत पा जाऊँ तो आपका हाथ बटा सकूँगा।"

"नहीं, अभी ऐसी जल्दी भी नहीं है।"—धनुर्धर बोले।

"अच्छा तो मुझे अन्य कई स्थानों पर जाना है, आज्ञा दीजिये।"—प्रोफेसर उठ खड़े हुये। धनुर्धर बाहर तक उन्हें पहुँचाने आये।

× × ×

कामरेड के स्थान से प्रियव्रत सीधे सत्यस्नेह के निवासस्थान पर गये। वहाँ भी उनकी बड़ी आवभगत हुई। सत्यस्नेह को ज्योंही मालूम हुआ कि प्रोफेसर प्रियव्रत आये हैं तो वे बँगले के बाहर आकर उन्हें सम्मानपूर्वक अपनी बैठक में लिवा ले गये।

"कहिये प्रोफेसर साहब कैसे दर्शन दिया?"—सत्यस्नेह ने आभार प्रकट करते हुये कहा।

"आप तो जानते ही हैं सत्यस्नेह जी कि मैं भी आप से पूछे बिना ही खड़ा हो गया हूँ। अब तो आप को मेरे लिये कष्ट उठाना ही पड़ेगा।"—प्रियव्रत ने सत्यस्नेह को चढ़ाते हुये कहा।

सत्यस्नेह ने सोचा—प्रियव्रत तुम डाल डाल तो मैं पात पात, किन्तु प्रत्यक्षरूप से बोले—

"मैंने बिना आप के कहे ही आप के लिये कहना शुरू कर दिया है। भला आप अपने काम के लिये मेरे सामने मुँह खोलें तब तो मेरा होना ही व्यर्थ है।"

"आप ही के बल पर तो मैं खड़ा हूँ।"—प्रियव्रत मुस्करा कर बोले।

सत्यस्नेह ने उनकी बात को अनसुनी करते हुये कहा—

"अभी कल वर्म्मा और डा० लाल मिले थे, मैंने दोनों ही से आपके लिये वादा करा लिया है। आज शाम फिर निकलूँगा यही काम ले कर।"

"आप में बड़ा उत्साह है सत्यस्नेह जी।" प्रियव्रत को कुछ-कुछ विश्वास हो चला था सत्यस्नेह की बातों पर। दूसरी ओर वे यह भी सोच रहे थे कि इस झंझट से छुटकारा पाकर सत्यस्नेह को डाउन (नीचा) करना भी है।

"आप मेरी ओर से कोई चिन्ता न करें। अन्य जगहों को आप देखें। मेरी सरकिल (प्रभावक्षेत्र) का एक भी मतदाता आपके विरुद्ध नहीं जायगा।" सत्यस्नेह ने कह तो दिया लेकिन वे सोच रहे थे कि और दो भिखारी यूनियन का साथ प्रियव्रत। तुम समझते थे कि तुम्हें कभी कोई काम ही नहीं पड़ेगा। अब फँसे हो बच्चू। बीच मझधार में अगर तुम्हें न डुबोया तो मेरा नाम सत्यस्नेह नहीं।"

"जब आप इतना कष्ट उठा रहे हैं तो फिर आप से अधिक क्या कहना।" —प्रोफेसर बोले।

"यह तो मेरा कर्त्तव्य है इसमें कष्ट कैसा।"—सत्यस्नेह ने दृढ़तापूर्वक कहा।

"आजकल धनुर्धर फिर जोर पकड़ रहे हैं।"—प्रोफेसर बोले।

"जी हाँ, उनकी तो dog in manger policy (न खुद खाय, न दूसरों को खाने दे) है।"—सत्यस्नेह जी द्रवित होकर बोले।

"देखेंगे इनको भी। जरा मैं फ़ुरसत पा जाऊँ।"—प्रोफ़ेसर चलने के लिये उठते हुये बोले।

कवि अनजान ने डाक्टर दुग्गल से सर्टिफिकेट लाकर सत्यस्नेह के पास भेज दिया। एक दिन बातों ही बातों में उन्होंने धनुर्धर को यह बात बता दी। धनुर्धर उखड़ गये। उन्होंने कहा—

"आपको ऐसा काम करने के पहले कुछ सोचना चाहिये था, अनजान जी। आखिर किसी निरीह के प्रति ऐसा नृशंस व्यवहार करके आप क्या पा जाँयगे ?"

अनजान जी का रंग उड़ गया। उन्हें क्या पता था कि उस पागल का आजकल इतना राजनैतिक महत्व हो गया है। अतः वे बोले—

"मुझे क्या पता था धनुर्धर जी कि संसार में लोग इस प्रकार छल भी कर सकते हैं। आप तो जानते ही हैं कि मैं ठहरा कवि, मुझे इन पेचीदगियों का किंचित भी ज्ञान नहीं है।" कवि बिलबिला उठे थे। वे फिर बोले—"मुझे उस ग़रीब के साथ नृशंसता करने में भला क्या मिल जाता, आप ही सोचिये।"

"सोचना तो आप को चाहिये था। आप क्यों पड़े इस झगड़े में, क्या सत्यस्नेह स्वयम् नहीं जा सकते थे ?"—धनुर्धर खीझ कर बोले।

कवि ने अपनी भूल स्वीकार किया और धनुर्धर से क्षमा-याचना किया।

धनुर्धर बड़े संकट में पड़े। अब कुछ करना उनके लिये आवश्यक हो गया था।

× × ×

सत्यस्नेह ने अनजान जी का लाया हुआ सर्टिफिकेट वाणिज्य मंडल के सचिव, लाला छन्नूमल के पत्र के साथ तलवार साहब के पास भेज दिया। अतः वे उस पागल की ओर से प्रायः निश्चिन्त से हो गये। बच रहे धनुर्धर सो उन्होंने समझ लिया कि साँप का दाँत तो अब टूट ही गया है, अब वह कर ही क्या सकता है। बस उस पागल के पागलखाने जाने भर की देर थी।

नगर में पश्चिमी जर्मनी का एक सांस्कृतिक मण्डल आने वाला था। उसके स्वागत की ज़ोरदार तैय्यारियाँ हो रही थीं। प्रोफेसर प्रियव्रत स्वागत मन्त्री बनाये गये थे। स्वागत समिति के सदस्यों में सत्यस्नेह और कवि अनजान भी थे। प्रेमा जी भी सांस्कृतिक मंडल के आगमन की उत्कण्ठापूर्वक प्रतीक्षा कर रही थीं, क्योंकि उनकी एक जर्मनी सहेली भी मण्डल में आ रही थी। उस पागल का चित्र भी उसी सहेली को देना था।

सांस्कृतिक मण्डल को कई कालेजों, विश्वविद्यालय, संस्थाओं आदि में जाना था। नागरिकों की ओर से एक अभिनन्दन पत्र भी देने का आयोजन किया गया था। प्रोफेसर प्रियव्रत सदस्यों के सम्मान में एक भोज देने को थे। प्रेमा ने एक छोटी सी चित्रकला-प्रदर्शनी का आयोजन किया था तथा कवि अनजान नागरिक सभा में पढ़ने के लिये एक सुन्दर सी कविता लिख रहे थे।

कामरेड धनुर्धर की डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग पक रही थी। उन्होंने भिखारी यूनियन की कार्य्यकारिणी की एक गुप्त बैठक बुलाकर प्रदर्शन की तिथि निश्चित कर दिया। कामरेड तथा उनके साथी प्रदर्शन का प्रबन्ध करने में व्यस्त हो गये।

नगर के विभिन्न प्रतिष्ठानों तथा संस्थाओं में मण्डल के स्वागत की ज़ोरदार तैय्यारियाँ होने लगीं। इधर कामरेड भी एक ज़ोरदार प्रदर्शन की ज़ोरदार तैय्यारी में व्यस्त हो गये।

सत्यस्नेह को जब कामरेड के प्रोग्राम का गुप्त समाचार प्राप्त हुआ तो वे तलवार साहब, सिटी मैजिस्ट्रेट से मिले और उन्हें स्थिति की गम्भीरता का परिचय दिया। तलवार साहब ने उन्हें आश्वासन दिया कि वे उनकी सहायता करेंगे, यदि किसी प्रकार का उपद्रव भिखारी यूनियन की ओर से खड़ा किया गया तो।

'वीरभद्र' ने जनता से अपील किया कि वह सांस्कृतिक मंडल का भव्य स्वागत करे और शान्तिपूर्वक उसका अभिनन्दन करे। सम्पादक बभ्रुवाहन जी भी यही चाहते थे कि सांस्कृतिक मंडल के समक्ष किसी भी प्रकार का भोंडापन प्रगट न

होने पाये। यह नगर की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। जहाँ दस घड़े रहते हैं वहाँ उनकी आपस में टक्कर हो ही जाती है, किन्तु घड़ों की टक्कर और छूँछेपन के विषय में कोई बाहरी क्यों जाने।

प्रोफेसर प्रियव्रत को कामरेड और सत्यस्नेह की टक्कर पसन्द तो थी, किन्तु तब तक नहीं जब तक उनका चुनाव न हो जाय। फिर भी वे सोचते कि यदि ये लोग भिड़ ही गये तो मेरा क्या बिगड़ता है, मुझे तो दोनों ही सहायता देंगे। और फिर डूबता हुआ आदमी तो साँप को भी सहारा समझ कर पकड़ लेता है।

कवि अनजान सोचते कि प्रेमा की सहेली का वे खूब आदर-सत्कार करेंगे, क्योंकि वह प्रेमा की सहेली है और चूँकि वह प्रेमा की सहेली है इसलिये उन्हें उसका दिल खोल कर आदर-सत्कार करना चाहिये। उन्होंने प्रेमा की सहेली के ऊपर एक कविता भी तैय्यार कर लिया था और उसके सम्मान में एक 'ऐटहोम' का भी आयोजन किया था।

लाला रोकड़मल ने एक प्रेस नोट निकाला था जिसमें कहा गया था कि नगर में सभा-समारोहों के लिए कोई अच्छा सार्वजनिक पार्क नहीं है, अतः वे स्वयम् पन्द्रह एकड़ का एक सुन्दर पार्क छः महीने के भीतर बनवा देंगे। लाला जी की इस घोषणा का जनता पर बड़ा ही स्वस्थ प्रभाव पड़ा।

हर्षनाथ बहुत बुरे फँसे थे। उनके ऊपर लगाये गये आरोपों के कारण उनकी बड़ी ही हेठी हो गई थी। इधर जाँच पड़ताल पूरी होने को नहीं आती थी। आजकल वे काफी 'कृशतनु' हो गये थे और गोल्फ खेलने का तो उन्हें बिल्कुल ही समय नहीं मिलता। उनकी पार्टी ने उन्हें दल की सदस्यता से मुअत्तल कर दिया था और उन्होंने म्युनिसिपैलिटी की सदस्यता से भी त्याग पत्र दे दिया था।

हर्षनाथ को क्या मालूम था कि कामरेड धनुर्धर उनके ऊपर विपत्तियों का पहाड़ लाकर पटक देंगे। उन्हें कभी सत्यस्नेह पर क्रोध आता तो कभी अपने आप पर। उन्होंने क्यों सत्यस्नेह की बात मान लिया और क्यों उनके कहने में आ गये। धनुर्धर को यदि छेड़ा न जाता तो यह सब न होता। क्यों घर बैठे विपत्ति मोल ले लिया उन्होंने—सोचते-सोचते वे अपने ही ऊपर खीझ उठते।

वैसे हर्षनाथ यह जानते थे कि उनकी पार्टी ने वाह्यरूप से तो उन्हें मुअत्तल कर रक्खा है किन्तु पार्टी की मान्यताओं और प्रतिष्ठा की रक्षा के हेतु अन्ततोगत्वा उन्हें सहायता मिलेगी। वे शीघ्र ही इस दलदल से छुटकारा पाना चाहते थे, किन्तु दलदल था कि बढ़ता ही जा रहा था ?

हर्षनाथ कामरेड से बदला लेने के फेर में थे, किन्तु कामरेड ने कच्ची गोलियाँ नहीं खेली थीं। उनको धनुर्धर पर बड़ी भूँझल आती, लेकिन क्या करते अपने ही जाल में स्वयम् फँस चुके थे।

हर्षनाथ को यह जाँच पड़ताल और क़ायदे-क़ानून का रवैय्या बहुत बुरा लगता। आखिर मनुष्य को कष्ट और हैरानी के सिवा इससे मिलता भी और क्या है। इन क़ायदे-क़ानूनों ने ही तो संसार में सारा झगड़ा-कलह फैला रक्खा है। ये कानून सिवा कष्ट और असन्तोष के व्यक्ति को कुछ नहीं देते। न ये क़ायदे-क़ानून होते और उन्हें इतने झंझट उठाने पड़ते।

कुछ दिन पहले हर्षनाथ जी कायदे-क़ानून के बड़े पक्षपाती थे । किसी दिन स्टेशन पर यदि टिकट लेना होता तो लाइन में लग जाते, राशनिङ्ग के दिनों में भी जनता को दिखाने के लिये दो चार बार वे लाइन में लगे थे । तब वे कहा करते--"कानून का पालन करना ही सच्ची स्वतन्त्रता है । अभी देश को स्वतन्त्रता का शैशव काल है, इसलिये प्रत्येक नागरिक को क़ानून मानना चाहिये और उनके अनुसार आचरण करना चाहिये । ऐसे कार्य्य करना जिनसे क़ानून भंग होते हैं, अराजकता फैलाना है; और कानून तोड़ने वाले व्यक्ति गद्दार हैं ।" किन्तु अब स्थिति बदल गई थी, यद्यपि हर्षनाथ के ऊपर अभी अदालत में मुकदमा नहीं चला था तथापि उन्हें अभी से ये क़ानून-कायदे अखरने लगे थे । वे नहीं चाहते थे कि व्यक्ति की स्वतन्त्रता एवम् स्वच्छन्दता कानून के शिकंजों में रहें ।

व्यक्ति अपने लिये छूट चाहता है । वह प्रत्येक अच्छी वस्तु की कल्पना अपने लिये करता है और बुरी वस्तु को दूसरों के हिस्से में देना चाहता है । विधियों का निर्माण करने वाले स्वयम् कभी नहीं सोचते कि यह अन्धे की लाठी कभी उनके सिर पर पड़ सकती है । क्या डा० गिलोटिन ने स्वप्न में भी यह सोचा होगा कि जो गिलोटिन यन्त्र उन्होंने फ्राँसीसी राज्यक्रान्ति के दण्ड प्राप्त व्यक्तियों के शिरोच्छेदन के लिये बनाया है, एक दिन उनका भी शिरोच्छेदन कर देगा ? यह अपने लिये छूट माँगना, अपने सुख-समृद्धि की कल्पना ही व्यक्ति पर दुःख और यातना लाती है । जो दुःख से भागते हैं, दुःख उन्हें कभी नहीं छोड़ता । किन्तु जो दुःख सहन करते हैं, दुःख से भी जिन्हें प्रेम होता है, उनका दुःख दुःख नहीं रहता अपितु आत्मविस्मृति बन जाता है । दुःखों से कतराना ही सब से बड़ी कमज़ोरी है । चिल्ला कर भागने वाले को साँप दौड़ा कर काटता है, किन्तु साहसी उसे पूँछ पकड़ कर उठा लेते हैं । हिम्मत कर के डट जाने पर झपटता हुआ सिंह भी क्षण भर को सहम जाता है ।

कवि से अब और सहा नहीं जाता था, अतः उन्होंने प्रेमा से प्रस्ताव करने का निश्चय किया। वे धनुर्धर से कुछ कहने सुनने की आवश्यकता नहीं समझते थे, क्योंकि प्रेमा स्वयम् ही तरक्कीपसन्द थी, अतः उसका निर्णय कोई नहीं टाल सकता था। प्रेमा से प्रस्ताव करने के पहले एक बार अनजान जी डाक्टर दुग्गल से फिर मिले। दुग्गल ने उन्हें फिर आश्वासन दिया कि वे निश्चिन्त रहें, 'सेक्स' तो अपना काम करता ही है, क्योंकि वह नेचुरल है और प्रकृति के नियम अटल होते हैं। अतः एक दिन जी कड़ा कर के कवि ने झेंपते हुये प्रेमा से प्रस्ताव किया। प्रेमा सन्नाटे में आ गई। उसने कवि से पूछा—"आप की तबीयत तो ठीक है?"

"तुम जैसा समझो।"--कवि ने सिर नीचे किये उत्तर दिया।

"आप को सोचना चाहिये था, अनजान जी! आप का और मेरा भला क्या संयोग। आप विवाहित हैं। क्या आप का अपनी वर्त्तमान पत्नी के प्रति कोई कर्त्तव्य नहीं? आप कवि हैं, समाज के सुधारक हैं, यह कैसा अन्तर्विरोध है स्वयम् आप में जो आप अपना सुधार नहीं कर सकते? मुझे क्या मालूम था कि आप का लक्ष्य कुछ और है, मैं तो आप को एक ऊँचा कलाकार मान कर आप में आस्था रखती थी।"

अनजान जी को लगा जैसे कोई भिगो-भिगो कर जूते लगा रहा है। उनका सारा स्वप्न पानी में पड़े बताशे की भाँति अपना अस्तित्व खो बैठा। ताश के पत्तों के घर की भांति उनकी कल्पनाओं का महल गिर पड़ा। लगा जैसे किसी ने दूर क्षितिज पर उड़ते हुये पंछी को गोली मार दिया हो। कवि का कण्ठ सूख गया और उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल पाया। प्रेमा ने जाने और क्या क्या कहा, कवि के होश ठिकाने नहीं थे जो वे उसकी बातें सुनते।

× × ×

कवि को बड़ा भारी धक्का लगा। उन्हें लगा अब वे सम्भलने के नहीं। उनके सामने उनके बचपन और ग़रीबी का धूल भरा चित्र घूम गया। जब वे पैसे-पैसे को तरसते। सिर पर आटा, दाल और सत्तू लाद कर घर से शहर ले जाया करते। उन्हें स्मरण आया शीतकाल का एक सबेरा, जब वे नंगे पैर ही सिर पर गठरी लादे मुँहअँधेरे घर से शहर जाने के लिये चल पड़े थे और जब रास्ते में पड़ने वाली नदी के कमर भर पानी को पार किया था तो उन्हें ऐसा लगा था कि जैसे उनका आधा शरीर सुन्न हो गया है। उनका प्राण ठिठुर कर जैसे उनके मुँह में आ बैठा था—निकलने के लिये। फिर भी लोग उनकी दरिद्रता की प्रशंसा करते और साथ ही उन्हें बढ़ावा देते, किन्तु अब जब उनके पास सब कुछ है तो लोग उन्हें ईर्ष्या और अविश्वास की दृष्टि से देखते हैं। आखिर उन्होंने क्या बिगाड़ा है किसी का? क्या संसार दुःख ही देना जानता है? क्या संसार में कपट, अविश्वास और यातना के अलावा कुछ भी नहीं?

कवि अनजान की दशा दयनीय थी। दुःख वे स्वयम् अपने ऊपर लाये थे। उनका सोचने, समझने और काम करने का ढंग ही निराला था, यद्यपि वे अपना ढंग सही मानते थे। किन्तु कवि ने भी हिम्मत बाँधी; उन्होंने दुःख को सुख तथा जीवन का सत्य मान कर अपनाया। दुःख को दुःख मानना तो मोह है, अतः अब वे पुनः मोह में नहीं बँधना चाहते थे, और फिर शुद्ध दुःख भी तो प्रायः अप्राप्य होता है।

कवि ने 'पागल' पर लिखा जाने वाला उपन्यास जहाँ का तहाँ छोड़ा, और अब अपनी ही जीवनी को एक उपन्यास का रूप देने लगे। प्रेमा से अब भी वे वैसा ही प्रेम करते थे, किन्तु अब प्रेमा को पाने की कल्पना में उन्हें आनन्द नहीं मिलता, अब तो वह उसकी स्मृति को ही अक्षुण्ण रखना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि प्रेमा से साक्षातकार हो या अब से दस या बीस वर्ष बाद भी उससे उनकी भेंट हो। रवि ठाकुर की ये पंक्तियाँ अब उन्हें बहुत सुख देतीं—
'Life of life, I shall ever try to keep my body pure, knowing that thy living touch is upon all my limbs.'

मनुष्य अपने को कितना ही रोके, किन्तु उभार तो दबते-दबते ही दबता है। अनजान को स्मरण हो आते वे क्षण, वे दिन, वे चन्द महीने जब उन्होंने कल्पना के सहारे एक संसार की रचना किया था। वे सोचते कि प्रेमा उनको नहीं मिली तो क्या हुआ, क्या सभी को सभी इच्छित वस्तुयें मिल ही जाती हैं? फिर भी प्रेमा अपनी है, उन्होंने एक बार हृदय से उसे अपना माना है, और यदि उसने उनके वासनाजन्य प्रेम को ठुकरा दिया तो उचित ही किया। अपने सदैव अपनों का भला ही सोचते हैं! प्रेम तो त्याग है, समर्पण है, विस्मृति है। अतः कवि में अब प्रेमा के प्रति शुद्ध प्रेम जागा था। किन्तु कभी-कभी जब पीड़ा सही नहीं जाती तो वे कह उठते—

"I will deck thee with trophies, garlands of my defeat. It is never in my power to escape unconquered."

अनजान अस्त-व्यस्त और दयनीय हो गये थे, किन्तु उनके भीतर कहीं एक व्यवस्था जन्म ले रही थी, कहीं एक स्रोत फूट रहा था; उनके दुःख का परिष्कार हो रहा था।

जब से कामरेड धनुर्धर ने प्रदर्शन का निश्चय किया था तब से सत्यस्नेह की दशा काग जयन्त की हो गई थी। वे इधर उधर दौड़ते फिर रहे थे, किन्तु उन्हें कुछ नहीं सूझ रहा था। उन्हें एक अप्रत्यक्ष भय दबाये जा रहा था, क्योंकि वे जानते थे कि कामरेड का उन्हीं से लोहा है। हर्षनाथ के उलझ जाने से स्थिति बड़ी ही विचित्र हो गई थी। सम्पादक बभ्रुवाहन जी ने विद्यार्थी-प्रदर्शन से ही धनुष-बाण रख दिया था। एक समय था जब अर्जुन के गाण्डीव का नाम सुनकर लोग थरथरा जाते थे, किन्तु उसी अर्जुन के सामने भीलों ने गोपियों को लूट लिया, अर्जुन कुछ न बिगाड़ सके। बभ्रुवाहन की भी ऐसी ही स्थिति थी। कामरेड और उनका दल बभ्रुवाहन जी के लिए भीलों से कुछ कम न था और गोपियाँ लुट जाँय तो लुट जाँय, वे क्या कर सकते थे, बेचारे। और इस कारण से ही बभ्रु जी हर्षनाथ और सत्यस्नेह की सहायता नहीं कर पाये।

कवि ने अब सांसारिकता से जैसे सन्यास ले लिया था, सो अब वे सत्यस्नेह के काम आने से रहे। जब सत्यस्नेह ने कवि से इस विषय में कहा तो वे बोले—

"भाई सत्यस्नेह जी, यह संसार मिट्टी है, यहाँ पीड़ा के सिवा कुछ भी नहीं। पीड़ा ही सत्य है, चिरन्तन है, फिर क्यों आप पीड़ा से भागते हैं। पीड़ा को अपनाइये, उसमें विश्वास कीजिये, फिर देखिये आपको कितना सुख और सन्तोष मिलता है।"

सत्यस्नेह को कवि का उपदेश बहुत अखरा। किन्तु सौजन्यवश बोले—

"आप ठीक कहते हैं अनजान जी, किन्तु अन्याय द्वारा दी गई पीड़ा विनाशिनी होती है, अतः अन्याय सहन नहीं करना चाहिये।"

"हाँ यह तो आप उचित ही कह रहे हैं, किन्तु अन्याय को सहना भी बहुत बड़ा संयम हैं और जो अन्याय सहन कर लेता है फिर अन्याय द्वारा दी गई

पीड़ा भी उसके लिये सुखदायिनी हो जाती है। और अन्याय को अन्याय माना ही क्यों जाय; अन्याय को प्रेम क्यों न माना जाय ?"

सत्यस्नेह की समझ में कवि का यह फिलसफा नहीं आ रहा था, वे तो स्वयम् अस्त व्यस्त थे। उन्हें अनजान से सहानुभूति नहीं उत्पन्न हुई, अपितु उन्होंने सोचा कि कवि पागल हो गये हैं, अन्यथा ऐसी बातें कौन करता है। फिर भी धीरज धर के बोले—"अनजान जी, मैं तो आप से यही निवेदन कर रहा था कि आप धनुर्धर को समझा दें, क्यों अनायास ही वे विपत्ति मोल ले रहे हैं। भला आप ही बताइये कभी संघर्ष और युद्ध से कुछ नतीजा निकला है ?"

"संघर्ष और युद्ध ही तो जीवन की कसौटी हैं क्योंकि वे पीड़ा देते हैं, और पीड़ा तो व्यक्ति, समाज और समस्त मानव जाति को निखार सकती है—उनका परिष्कार कर सकती है।"

"किन्तु इस संघर्ष से क्या परिष्कार होगा, क्या निखार आयेगा ?"–सत्य-स्नेह मन ही मन झुँझला कर बोले।

"इस विवाद को बढ़ाने से क्या लाभ, मैं अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करूँगा, भाई सत्यस्नेह जी।"—कवि ने स्वयम् छुटकारा पाने के विचार से कहा।

सत्यस्नेह धन्यवाद देकर चले आये। उन्हें कवि के आश्वासन पर सन्तोष नहीं हुआ। वे प्रोफेसर प्रियव्रत के पास पहुँचे और उनसे सारा किस्सा सुनाया तथा यह भय प्रकट किया कि सम्भवतः सांस्कृतिक मण्डल के नगर में आने के अवसर पर ही धनुर्धर प्रदर्शन का आयोजन न करें। यदि ऐसा हुआ तो नगर की प्रतिष्ठा पर बड़ा भारी धब्बा आयेगा।

"स्वागत समिति के सदस्य और मन्त्री होने के कारण मेरा और आप का यह कर्त्तव्य हो जाता है प्रोफेसर, कि इस प्रदर्शन को रोकने का प्रयत्न किया जाय।"—सत्यस्नेह ने प्रोफेसर को जैसे उनका कर्त्तव्य स्मरण दिलाते हुये कहा

"ऐसा नहीं होना चाहिये, सत्यस्नेह जी। यदि उस दिन प्रदर्शन हुआ तो बड़ा अनर्थ होगा।"—प्रोफेसर ने गम्भीर भाव से कहा।

अन्त में प्रोफेसर तथा सत्यस्नेह ने यह निश्चित किया कि बभ्रुवाहन जी पर दबाव डाल कर उनके पत्र द्वारा नागरिकों के अपील की जाय कि वे ऐसे किसी प्रकार के प्रदर्शन को प्रोत्साहन न दें और साथ ही ऐसे सभी तत्वों को दबायें जो कि प्रदर्शन के लिये उन्हें उकसायें अथवा उनसे सहयोग माँगे।

सम्पादक बभ्रु जी बड़ी कठिनाई से राजी हुये। 'वीरभद्र' द्वारा जनता से अपील की गई कि वह वामपंथियों के कहने में न आये, क्योंकि वे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये नाना प्रकार के उत्पात खड़ा किया करते हैं।

कामरेड ने 'वीरभद्र' की अपील पढ़ा, किन्तु वे चुप रहे। उनके दल का पत्र 'ज्वालामुखी' भी चुपचाप रहा। स्थिति तूफ़ान आने के पहले छाये हुये सन्नाटे सी थी।

सत्यस्नेह का साथ हर्षनाथ का दल और अन्य गण्यमान्य लोग दे रहे थे। हर्षनाथ के दल वालों ने निश्चय किया था कि यदि धनुर्धर ने प्रदर्शन किया और जुलूस सांस्कृतिक मंडल के सम्मान में आयोजित नागरिकों की सभा में लाया गया तो वे भी कुछ उल्टा सीधा करने से नहीं चूकेंगे।

सत्यस्नेह ने धनुर्धर की नाकेबन्दी तो करवा दिया था किन्तु उनका भय ज्यों का त्यों बना हुआ था। यद्यपि अधिकारियों द्वारा सांस्कृतिक मन्डल के आगमन के दिन शान्ति और व्यवस्था बनाये रखने का हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा था फिर भी सत्यस्नेह को कुछ खटक रहा था, क्योंकि वे धनुर्धर को भलीभाँति जानते थे।

× × ×

प्रोफेसर प्रियव्रत ने धनुर्धर से प्रदर्शन रोकने के लिए कहा, किन्तु धनुर्धर ने कोई साफ उत्तर नहीं दिया। उनकी तैय्यारी जोरों पर थी और अब उनके लिये पीछे हटना असम्भव था। वे भली भाँति जानते थे कि यदि अब की बार

वे प्रदर्शन नहीं करेंगे तो फिर सत्यस्नेह का पक्ष मजबूत हो जायगा और तब स्वयम् कामरेड की अपनी स्थिति नाजुक हो जायगी। उन्हें पोलिटब्यूरो का भी भय था, अतः वे प्रदर्शन को सफलतापूर्वक निभा कर स्वयम् भिखारी यूनियन से छुटकारा लेना चाहते थे। और प्रदर्शन के लिए इससे उचित अवसर क्या हो सकता था—जब सांस्कृतिक मंडल नगर में हो और नागरिकों की भारी भीड़ उसके स्वागत के लिये एक ही स्थान पर एकत्रित हो। अतः धनुर्धर यह मौका खोना मूर्खता समझते थे। वे स्पष्ट देख रहे थे कि इस मौके को खोने का अर्थ है स्वयम् उनका पतन। वे स्वयम् परिस्थितियों द्वारा विवश हो गये थे। यदि ऐसा न होता तो वे इस प्रश्न पर विचार करते और प्रियव्रत की बात मान कर प्रदर्शन की तिथि टाल देते या प्रदर्शन का आयोजन करते ही नहीं, किन्तु अब उनके लिये कोई चारा नहीं था अतः उन्होंने अपना पूर्व निश्चित कार्य्यक्रम जारी रक्खा।

कुत्ता ! स्वामिभक्त ! पहरेदार ! वफादार ! ईमानदार ! रुखी-सूखी जो भी पाता है उस पर सन्तोष करता है। असन्तोष और विद्रोह उसे छू तक नहीं पाये हैं। कुत्ता शान्तिप्रिय है, कर्त्तव्यपरायण है, मान्यताओं और प्रतिष्ठाओं के प्रति श्रद्धानत है।

कुत्ता—जो दो टुकड़ों के लिए दुम हिलाता है, रुखी-सूखी और जूठन पर अपने आपको बेंच देता है, बन्धन और विवशताओं को जिस ने अपने ऊपर ले रक्खा है, शोषण और चोरी की जो रक्षा करता है—जिसके भीतर स्वाभिमान की आग नहीं है, जिसके भीतर दासता का गन्दा गटर बहता है। कुत्ता कायर है, दासता और भीरुता का ज्वलन्त उदाहरण है, बिना मोल बिका हुआ मिट्टी का चलता फिरता लोंदा है। कुत्ते को ही देख कर अन्य पशु भी दास बनाये गये, उनका शोषण किया जाने लगा; कुत्ते ने उस शोषण और उत्पीड़न में सक्रिय सहयोग दिया। बिल्ली को कुत्ता धर दबाता है, हाथी को देखकर भौंकता है, किन्तु अपने स्वामी को देख कर पूँछ हिलाता है। कुत्ता कृतघ्न है, नारकीय है, हेय है।

और हाथी ! इतना बड़ा शरीर, इतना बल, इतना बड़ा सूँड, इतने भारी पैर—फिर भी भीरु है, बल, पौरुष और पराक्रम के नाम पर एक कलंक है। कायर, बल्लम और बरछी से डरता है। पीलवान से घबड़ाता है। उसके इशारे पर उठता बैठता है।

मनुष्य ? मनुष्य में तो दासता बहती है। भय उसके रक्त में घुलमिल गया है। उसने प्राणिमात्र के सामने दासता और बन्धन रक्खा है। स्वयम् बँधा है, इसलिए दूसरों को भी बाँधना चाहता है। स्वयम् कमज़ोर है, कायर है, इसलिये दूसरों को भी कायर और कमज़ोर बनाता है। स्वयं स्वार्थी है अतः दूसरों से भी स्वार्थ साधना चाहता है। मनुष्य दास है, दास है, दास है।

मनुष्य झूठा है, धूर्त है। इतना झूठा और इतना धूर्त कि अपने आप से झूठ बोलता है, अपने आपको धोखा देता है। मनुष्य दास है। मनुष्य झूठा है। मनुष्य धूर्त है। मनुष्य कायर है। मनुष्य कुछ भी नहीं। मनुष्य शून्य है। मनुष्य एक लिपा पुता चित्र है। उसमें कुछ भी दर्शनीय नहीं, कुछ भी सराहनीय नहीं, कुछ भी स्पृहणीय नहीं।

मनुष्य-हाथी-कुत्ता, इन सबसे भला है साँप। तृण भी छू जाय तो फुँफकार कर खड़ा हो जाता है। हिमालय सा महान शत्रु भी सम्मुख हो तो भी डट जाता है। मृत्युरूपी नेवले से भी डर कर भागता नहीं। साँप अच्छा है, वीर है, साहसी है, स्वतन्त्र है। उस पर बन्धन नहीं, वह बन्धन नहीं मानता, वह सच्चा है, ईमानदार है—अपने और अपने शत्रुओं के प्रति। वह धूर्त नहीं, कायर नहीं, झूठा नहीं। साँप सराहनीय है। साँप स्पृहणीय है। अतः साँप अनुकरणीय है।

कवि अनजान अपने लॉन में बैठे थे। धवल चाँदनी हरियाली पर जैसे थिरक सी रही थी। उनके समीप से ही एक काला विषधर साँप ऐंठता अकड़ता जाने लगा था। कवि को हरी घास, चाँदनी और साँप का संयोग बड़ा ही प्रिय लगा। साँप चांदनी में ऐसे चमक रहा था जैसे काले हीरे की माला टूट कर फिसलती हुई जगमगा रही हो। तब तक कवि का कुत्ता भौंकता हुआ साँप पर झपटा। साँप फुफकार कर पूँछ पर खड़ा हो गया। कुत्ता झपटने को होता, साँप फुफकारता, कुत्ता पीछे हट जाता। साँप का क्रोध और साहस देख कर कुत्ता दुम दबा कर हट गया, साँप फिर मन्थरगति से झाड़ी में चला गया। इस घटना ने कवि के मन को उद्वेलित कर दिया। साँप के साहस तथा वीरता के प्रति उनके मन में आदर उत्पन्न हो गया था। कुत्ते के प्रति उनके भीतर कहीं विचित्र घृणा उत्पन्न हो गई थी। साँप के एकाकीपन में भी कितना आत्मविश्वास था, कितना धैर्य था—सहने का, परिस्थितियों से डट कर लड़ने का। कवि को लगा कि विष में शक्ति है। घृणा में शक्ति है। शक्ति प्यार में नहीं होती।

किन्तु क्या घृणा से कुछ पाया जा सकता है ? क्या विष जीवन में सरसता पैदा कर सकता है ? घृणा और विष से दमन किया जा सकता है, युद्ध लड़े जा सकते है, शत्रुओं को पराजित किया जा सकता है, किन्तु घृणा से ईश्वर को नहीं पाया जा सकता। यदि घृणा विष है तो प्रेम ज़हरमोहरा। प्रेम निःसन्देह दुर्बल है, कोमल है, किन्तु इसका यह अर्थ तो नहीं होना चाहिये कि प्रेम व्यर्थ है। प्रेम की शक्ति अव्यर्थ है।प्रेम जब वेदना देता है तब भी वह व्यर्थ नहीं होता है अपितु उसके द्वारा आत्मा सँवरती है—निखरती है। घृणा यातना दे सकती है, वेदना उसके पास नहीं। घृणा घृणा उत्पन्न करती है और प्रेम विश्वास। और विश्वास ही मनुष्य के पास वह अमूल्य रत्न है जिसके द्वारा अँधेरे जीवन में भी वह थोड़ा सा प्रकाश पाता है अथवा प्रकाश की पूर्व की कल्पना कर सकता है। प्रेम की पीड़ा भी तो विश्वास के सिवा कुछ नहीं। और दर्द का भी एक रचनात्मक स्वरूप है, जो कुछ देता है।

कवि को लगा कि प्रेम से प्रेम करना या पीड़ा से प्रेम करना एक ही बात है, किन्तु घृणा को शक्ति मान कर उसकी आराधना करना आत्मप्रवञ्चना है। मनुष्य आजीवन प्रेम तो कर सकता है, किन्तु आजीवन घृणा करना उसके लिये सम्भव नहीं, क्योंकि प्रेम आन्तरिक है और घृणा वाह्य। घृणा धूल का का बादल है और प्रेम अमृतमय घटा। धूल का बादल छूँछा है, बरसता नहीं, निष्प्राण है, झूठा है; किन्तु घटा प्राणदायिनी है, हरियाली देती है, जलन मटाती है।

जब प्रेम पर घृणा छा जाती है तब जीवन में अन्धकार छा जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे ईश्वर और सत्य पर असत्य और अशिव का घटाटोप छाया हुआ है। ईश्वर को पाना हो तो प्रेम करो-केवल प्रेम। ईश्वर तो हमारे चारो ओर फैला है, किन्तु हम उसे पा नहीं सकते केवल इसलिये कि हमारे भीतर घृणा है, कपट है। हम अनायास ही कहते हैं कि ईश्वर ज्ञान के रास्ते की दुर्भेद्य दीवार है, किन्तु यह असत्य है। हमारे भीतर की घृणा और मोह ईश्वर को ज्ञान के रास्ते की दीवार कहते हैं। ईश्वर तो ज्ञानमार्ग का प्रकाशस्तम्भ

है। ईश्वर हमारे भीतर है, सत्य हमारे पास है—केवल हम उसे देख नहीं पाते।

अहङ्कार छिछले ज्ञान से उत्पन्न होता है। अहङ्कार घृणा उत्पन्न करता है और यह घृणा घातक होती है। इस घृणा का दमन करके ही व्यक्ति ऊपर उठ सकता है। घृणा से बुराइयों का दमन होता है--ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ज़हरीली दवाओं से रोग का शमन होता है, किन्तु रोग दब जाने के उपरान्त विष अपना प्रभाव दिखलाता है। अतः घृणा में दबाव है, भारीपन है जिसके हल्का होते ही बुराई फिर उभड़ पड़ती है।

प्रेम सत्य है, और जो कुछ सत्य है वही ईश्वर है। अतः प्रेम ईश्वर है। प्रेम एक पवित्र कर्त्तव्य है, ईश्वर भी एक कर्त्तव्य है। कर्त्तव्य को नहीं करना कर्त्तव्य का उल्लंघन करने वाले ही को हानि पहुँचाता है। उसी प्रकार जब प्रेम और ईश्वररूपी कर्त्तव्य पूरे नहीं किये जाते तब आत्मा कुण्ठित हो जाती है। प्रेम और ईश्वर एक विश्वास हैं और विश्वास सब से ऊँचा होता है, सब से सुन्दर होता है। जो विश्वास खो देता है, जिसमें विश्वास नहीं—वह अपने आप को खो देता है। जिसने स्वयम् को खो दिया वह फिर अपने को नहीं पाता, प्रेम और ईश्वर को पाना तो दूर रहा। प्रेम और ईश्वर, विस्मृति और तन्मयता माँगते हैं और विस्मृति और तन्मयता स्वयम् को खो कर नहीं पाई जाती।

कवि ने निश्चय किया कि वे प्रत्येक वस्तु से प्रेम करेंगे। जो त्याज्य हैं, जो घिनौने हैं, जो अग्रहणीय हैं—उन सब से। वे उठ कर कमरे में गये और उन्होंने एक कविता लिखना प्रारम्भ किया। उन्हें लगा जैसे जीवन में आज पहली बार वे कविता लिखने बैठे हैं। जीवन में पहली बार आज उन्होंने एक मार्ग निश्चित कियो है। जीवन में पहली बार आज उन्होंने जीवन को स्वयम् जीवन का साध्य माना है।

कवि ने लिखा—

"मुट्ठी भर मिट्टी,

चुटकी भर राख,
कोढ़ जीवन का,
घिनौनापन अंगों का,
टूटी हुयी चूड़ियाँ,
सड़े हुये फेफड़े,
मसले गये सुमन,
अँधेरा आँखों का,
यह सब मेरा है।
ये मेरे अपने हैं,
क्योंकि ये सत्य हैं।"

कविता लिखने के उपरान्त कवि के सामने उस पागल का चित्र घूम गया। उन्हें लगा कि वह न तो कुत्ते या हाथी की भाँति पालतू और विवश है, न साँप की भाँति विषधर और न आधुनिक व्यक्ति की भाँति आत्मप्रवंचक या स्वार्थी। वह विचित्र है, उसकी स्थिति विचित्र है। घिनौना होते हुये भी वह स्पृहणीय है, अनुकरणीय है।

नगर के एक सार्वजनिक पार्क में भारी भीड़ एकत्रित थी। सांस्कृतिक मण्डल नगर में आ गया था। मण्डल को नागरिक सम्मान दिया जा रहा था। सदस्यों को नगर पालिका की ओर से अभिनन्दन पत्र दिया जाने वाला था। सत्यस्नेह और धनुर्धर के साथ सांस्कृतिक मण्डल के सदस्य पधारे। उनके साथ प्रेमा भी थीं। सभा की कार्य्यवाही प्रारम्भ ही होने वाली थी कि कामरेड धनुर्धर भिखारी यूनियन के प्रदर्शनकारियों का जलूस लिये आ गये। नारे लगने लगे। सारी सभा का ध्यान उस ओर आकर्षित हो गया। सांस्कृतिक मण्डल के अध्यक्ष, डा० हेनरिच वॉन ब्रेवॉन ने प्रोफेसर प्रियव्रत से अंग्रेजी में पूछा--"ये कौन लोग हैं?"

प्रोफेसर बगलें झाँकने लगे, किन्तु उत्तर तो देना ही था। पास ही मंच पर बैठे हुये अनजान जी पर उनकी दृष्टि पड़ गई, उनको सूत्र मिल गया। वे अँग्रेजी में बोले—"ये लोग संस्कृत के कवि हैं। आप ने तो कालीदास का नाम सुना ही होगा, ये लोग कालिदास सोसायटी के मेम्बर हैं।"

डा० हेनरिच बोल उठे—"कितनी सादगी है यहाँ के कवियों में। हमारे योरोप के कवियों की भाँति न तो इनकी समस्यायें हैं और न कठिनाइयाँ। यही कारण है कि आप का देश इतनी आध्यात्मिक प्रगति कर सका है। वास्तव में आप का देश महान है। मैं जर्मनी जा कर एक लेख लिखूँगा—इन पहुँचे हुये भारतीय कवियों और उनके रहन-सहन पर। यह योरोपीय कलाकारों की आँखें खोल देगा।"

प्रियव्रत जी चुप रहे। नारे कुछ ऐसे अन्दाज से लग रहे थे कि उनमें एक लय जान पड़ती थी। डा० हेनरिच ने पूछा—"क्या ये लोग कोई कविता पढ़ रहे हैं?"

"जी हाँ, आप लोगों का अभिनन्दन ये लोग कालीदास सोसायटी की ओर से कविता पढ़ कर कर रहे हैं।"--प्रियव्रत ने बात बनाई। उन्होंने फिर कहा—

"चूंकि संस्कृत पुरानी भाषा है इसलिये संस्कृत की कविताओं में वह लय नहीं होती जो कि आधुनिक योरोपीय भाषाओं में है।"

"नहीं, यह काफी सरस और लयपूर्ण है।"—डा० हैनरिच बोले।

ज्यों-त्यों कर के प्रदर्शनकारी शान्त हुये और आगे बढ़ गये। सभा की कार्य्यवाही प्रारम्भ हुई। प्रबन्धकर्त्ताओं की जान में जान आई।

वास्तव में जलूस के प्रदर्शनकारी कुछ यों नारा लगा रहे थे—

'चोर कौन ?—सत्यस्नेह।'

'अपना हक हम माँग रहे हैं।'

'चोरी का माल वापस दे दो।'

आदि आदि।

सभा में जनता के सामने सत्यस्नेह की बड़ी हेठी हुई। उनकी सारी पोल खुल गई।

कामरेड धनुर्धर अपने अन्य साथियों सहित गिरफ्तार कर लिये गये।

प्रोफेसर धनुर्धर को अपनी वाक्पटुता पर रह रह कर गर्व हो आता।

सभा समाप्त हुई। सब लोग जाने लगे। प्रेमा ने कवि अनजान को देख कर मुँह फेर लिया। फिर भी कवि ने उसके समीप जाकर पूछा—"कहो प्रेमा, अच्छी तो हो ?" प्रेमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। कवि चुपचाप मानो अपना कर्त्तव्य निभा कर चले गये।

उपसंहार

कामरेड धनुर्धर छोड़ दिये गये थे, किन्तु पोलिटब्यूरो ने उन्हें भिखारियों का साथ देने तथा प्रदर्शन करने के कारण पार्टी से निकाल दिया।

जीवनदान संस्था के संचालकों ने देखा कि अब यदि सत्यस्नेह संस्था में कुछ दिन और बने रहे तो स्वयम् संस्था ही नहीं रह जायगी, अतः सत्यस्नेह को त्याग पत्र देना पड़ा।

प्रोफेसर प्रियव्रत उप-कुलपति का चुनाव हार गये थे और चुनाव को अवैधानिक साबित करने के लिये हाई कोर्ट में writ करने जा रहे थे।

कवि अनजान एक नया जीवन-दर्शन ले कर अपने नये उपन्यास पर जुट गये थे।

हर्षनाथ सम्मान सहित आरोपों से बरी कर दिये गये थे और पार्टी की सदस्यता भी उन्हें प्राप्त हो गई थी। अब उन्होंने फूँक फूँक कर कदम रखने का निश्चय कर लिया था।

विनय बम्बई से ठोकर खाकर लौट आया था और अब उसने रोजगार के दफ्तर में अपना नाम रजिस्टर करवा लिया था।

प्रेमा ने 'पागल' का चित्र अपनी सहेली को भेंट कर दिया था, और अब चित्रकला से उनका मन ऊब सा गया था। उनके भीतर भी रह रह कर कुछ उफन पड़ता।

लल्लू सजा काटकर आ गया था। भिखारी यूनियन टूट चुकी थी। भिखारी अपना अपना काम करने लग गये थे।

और 'पागल' पागलखाने भेज दिया गया था—अच्छा और सहो आदमी बनने.....?